

# जैनहितैषी

सितंबर अक्टूबर १९१६.



### जैनसमाज ।

तार्थक्षेत्रोंके झगड़े, स्त्रियोंकी अज्ञानमय-दुःखमय दशा, शास्त्रोंकी रक्षा और प्रचारके काममें लापरवाही और अगुओंकी 'भेड़ियाधसान' बुद्धिके अन्धेर; ये सब बातें देखकर शासनदेवी धनवानों, पण्डितों और बाबुओंको सम्मिलित शक्तिसे उद्योग करनेके लिए समझा रही है ।

सं०-नाथूराम प्रेमी ।

## विषय-सूची ।



१ भद्रबाहु-संहिता ( ग्रन्थपरीक्षा )- लेखक, श्रीयुत बाबू जुगलकिशोरजी मुस्तार । ... .. ४२१
२ पुस्तक-परिचय ... .. ४४२
३ शारदागम ( कविता )-ले०, श्रीयुत पं० रामचरित उपाध्याय । ... .. ४४७
४ राजनीतिके मैदानमें आओ-ले०, श्रीयुत ब्र० भगवानदीन । ... .. ४४६
५ जैनधर्मके पालनेवाले वैश्य ही क्यों ? ... .. ४४९
६ प्रार्थना ( कविता )-ले०, श्रीयुत पं० गिरधिर शर्मा । ... .. ४५४
७ जैनधर्म और जैनदर्शन ... .. ४५५
८ काश्मीरका इतिहास-ले०, श्रीयुत बाबू सुपाश्र्वदास जैन बी. ए. । ... .. ४६४
९ पतितोद्धार ( कविता )-ले०, श्रीयुत ब्र० विश्वभरदास गार्गीय ... .. ४६८
१० सूक्तसुक्तावली और सोमप्रभा- चार्य-ले०, श्रीयुत मुनि जिनविजयजी ४६९
११ माताका पुत्रको जगाना ( कविता ) ले०, श्रीयुत पं० रामचस्ति उपाध्याय ४७७
१२ सार्वजनिक धनकी जिम्मेवारी ४७९
१३ बालविवाह-ले०, श्रीयुत ठाकुर शिव- नन्दनसिंह बी. ए. ... .. ४८६
१४ युवकोंके प्रति ( कविता ) ... .. ४९५
१५ सम्मानित ( गल्प )-ले० श्रीयुत पं० ज्वालादत्त शर्मा ... .. ४९६
१६ विविध प्रसङ्ग ... .. ५०४
१७ तीर्थोंके झगड़े मिटानेका आन्दोलन ५०९
१८ भारतमें जैनसमाजकी अवस्था ५१९

## नियमावली ।

१. वार्षिक मूल्य उपहारसहित ३) तीन रुपया पेशगी है । बी. पी. तीन रुपया एक आनेका भेजा जाता है ।
२. उपहारके बिना भी तीन रुपया मूल्य है ।
३. ग्राहक वर्षके आरंभसे किये जाते हैं और बीचसे अर्थात् ७ वें अंकसे । बीचसे ग्राहक होनेवालोंको उपहार नहीं दिया जाता । आधे वर्षका मूल्य १) ६० है ।
४. प्रत्येक अंकका मूल्य पाँच आने है ।
५. सब तरहका पत्रव्यवहार इस पत्रसे करना चाहिए ।

मैनेजर-जैनग्रन्थरत्नाकर कार्यालय.

हीराबाग, पो० गिरगांव-बंबई ।

## प्रार्थनाय ।

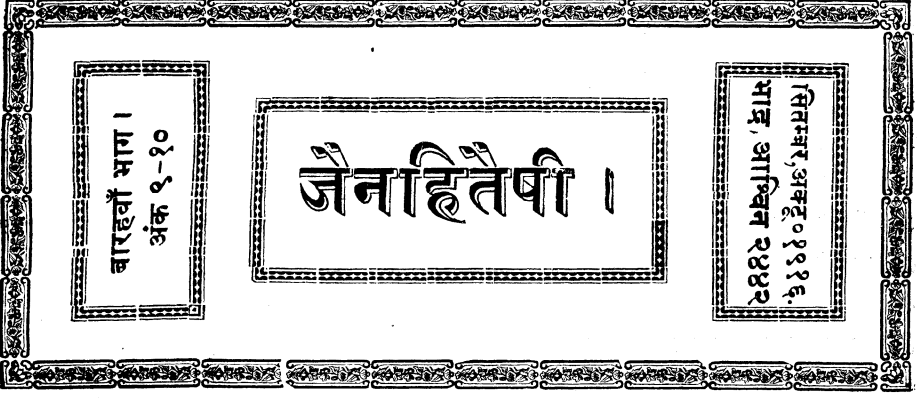
१. जैनहितैषी किसी स्वार्थबुद्धिसे प्रेरित होकर निजी लाभके लिए नहीं निकाला जाता है । इसमें जो समय और शक्तिका व्यय किया जाता है वह केवल अच्छे विचारोंके प्रचारके लिए । अतः इसकी उन्नतिमें हमारे प्रत्येक पाठकको सहायता देनी चाहिए ।
२. जिन महाशयोंको इसका कोई लेख अच्छा मालूम हो उन्हें चाहिए कि उस लेखको जितने मित्रोंको वे पढ़कर सुना सकें अवश्य सुना दिया करें ।
३. यदि कोई लेख अच्छा न मालूम हो अथवा विरुद्ध मालूम हो तो केवल उसीके कारण लेखक या सम्पादकसे द्वेष भाव न धारण करनेके लिए सविनय निवेदन है ।
४. लेख भेजनेके लिए सभी सम्प्रदायके लेखकोंको आमंत्रण है ।

—सम्पादक ।

## दूसरे उपहारकी सूचना ।

दूसरा उपहार अभीतक नहीं दिया गया, इसका कारण यह है कि जिन लेखक महाशयने उसे लिख देना कहा है वे अवकाशाभावके कारण अब तक लिख नहीं सके हैं । तकाजा किया जा रहा है । ज्यों ही वे लिख देंगे, त्यांही उसके छपानेका प्रबन्ध कर दिया जायगा । कागज खरीदा हुआ रक्खा है । एक धर्मात्मा सज्जनेने इस पुस्तकके छपानेका पूरा खर्च देनेकी स्वीकारता दे दी है !

हितं मनोहारि च दुर्लभ वचः ।



सारे ही संघ सनेहके सूतसौं, संयुत हों, न रहै कोउ द्वेषी ।  
प्रेमसौं पालैं स्वधर्म सभी, रहैं सत्यके साँचे स्वरूप-गवेषी ॥  
बैर विरोध न हो मतभेदतैं, हों सबके सब बन्धु शुभैषी ।  
भारतके हितको समझैं सब, चाहत है यह जैनहितैषी ॥

## भद्रबाहु-संहिता ।

( ग्रन्थ-परीक्षा-लेखमालाका चतुर्थ लेख । )



[ ले०-श्रीयुत बाबू जुगलकिशोरजी मुख्तार ]

जैनसमाजमें, भद्रबाहुस्वामी एक बहुत प्रसिद्ध आचार्य हो गये हैं । आप पाँचवें श्रुतकेवली थे । श्रुतकेवली उन्हें कहते हैं जो संपूर्ण द्वादशांग श्रुतके पारगामी हों—उसके अक्षर अक्षरका जिन्हें यथार्थ ज्ञान हो । दूसरे शब्दोंमें यों कहना चाहिए कि तीर्थंकर भगवानकी दिव्य ध्वनि द्वारा जिस ज्ञान-विज्ञानका उदय होता है उसके अविकल ज्ञाताओंको श्रुतकेवली कहते हैं । आगममें संपूर्ण पदार्थोंके जाननेमें केवली और श्रुतकेवली दोनों ही समान रूपसे निर्दिष्ट हैं । भेद है

सिर्फ प्रत्यक्ष-परोक्षका या साक्षात्-असाक्षात्का । केवली अपने केवलज्ञान द्वारा संपूर्ण पदार्थोंको प्रत्यक्ष रूपसे जानते हैं और श्रुतकेवली अपने स्याद्वादालंकृत श्रुतज्ञान द्वारा उन्हें परोक्ष रूपसे अनुभव करते हैं । जैसा कि स्वामि समन्तभद्रके इस वाक्यसे प्रगट है:—

स्याद्वादकेवलज्ञाने सर्वतत्त्वप्रकाशने ।

भेदः साक्षादसाक्षाच्च ह्यवस्त्वन्यतमं भवेत् ॥ १० ॥

—आप्तमीमांसा ।

जैनियोंको, भद्रबाहुकी योग्यता, महत्ता, और



सर्वमान्यता आदिके विषयमें इससे अधिक परिचय देनेकी जरूरत नहीं है। वे भद्रबाहुके द्वारा संपूर्ण तत्त्वोंकी प्ररूपणाका उसी प्रकार अविकल रूपसे होते रहना मानते हैं जिस प्रकार कि वह वीर भगवानकी दिव्यध्वनि द्वारा होती रही थी और इस दृष्टिसे भद्रबाहु वीर भगवानके तुल्य ही माने और पूजे जाते हैं। इससे पाठक समझ सकते हैं कि जैनसमाजमें भद्रबाहुका आसन कितना अधिक ऊँचा है। ऐसे महान् विद्वान् और प्रतिभाशाली आचार्यका बनाया हुआ यदि कोई ग्रंथ उपलब्ध हो जाय तो वह निःसन्देह बड़े ही आदर और सत्कारकी दृष्टिसे देखे जाने योग्य है और उसे जैनियोंका बहुत बड़ा सौभाग्य समझना चाहिए। अस्तु; आज इस लेख द्वारा जिस ग्रंथकी परीक्षाका प्रारंभ किया जाता है उनके नामके साथ 'भद्रबाहु' का पवित्र नाम लगा हुआ है। कहा जाता है कि यह ग्रंथ भद्रबाहु श्रुतकेवलीका बनाया हुआ है।

### ग्रन्थ-प्राप्ति ।

जिस समय सबसे पहले मुझे इस ग्रंथके शुभ नामका परिचय मिला और जिस समय ( सन् १९०५ में ) पंडित गोपालदासजीने इसके 'दाय-भाग' प्रकरणको अपने 'जैनमित्र' पत्रमें प्रकाशित किया उस समय मुझे इस ग्रंथके देखनेकी बहुत उत्कंठा हुई। परन्तु ग्रंथ न मिलनेके कारण मेरी वह इच्छा उस समय पूरी न हो सकी। साथ ही, उस वक्त मुझे यह भी मालूम हुआ कि अभीतक यह ग्रंथ किसी भंडारसे पूरा नहीं मिला। महासभाके सरस्वतीभंडारमें भी इसकी अधूरी ही प्रति है। इसके बाद चार पाँच वर्ष हुए जब ऐलक पन्नालालजीके द्वारा झालरापाटनके भंडारसे इस ग्रंथकी यह प्रति निकाली गई और ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजीके द्वारा, जैनमित्रमें,

इस पूरे ग्रंथके मिल जानकी घोषणा की गई और इसके अध्यायोंकी विषय-सूचीका विवरण देते हुए सर्व साधारण पर ग्रंथका महत्त्व प्रगट किया गया, तब मेरी वह ग्रंथावलोकनकी इच्छा और भी बलवती हो उठी और मैंने निश्चय किया कि किसी न किसी प्रकार इस ग्रंथको एकवार परीक्षा-दृष्टिसे जरूर देखना चाहिए। झालरापाटनकी उक्त प्रतिको, उसपरसे कई प्रतियाँ करा कर ग्रंथका प्रचार करनेके लिए, ऐलक पन्नालालजी अपने साथ ले गये थे। इस लिए उक्त ग्रंथका सहसा मिलना दुर्लभ हो गया। कुछ समयके बाद जब उन प्रतियोंमेंसे एक प्रति मोरेनामें पं० गोपालदासजीके पास पहुँच गई तब, समाचार मिलते ही, मैंने पंडितजीसे उसके भेजनेके लिए निवेदन किया। उत्तर मिला कि आधा ग्रंथ पं० घन्नालालजी बम्बई ले गये हैं और आधा यहाँपर देखा जा रहा है। अन्तको, बम्बई, और मोरेना दोनों ही स्थानोंसे ग्रंथकी प्राप्ति नहीं हो सकी। मेरी उस प्रबल इच्छाकी पूर्तिमें इस प्रकारकी बाधा पड़ती देखकर बाबा भागीरथजी वर्णिके हृदयपर बहुत चोट लगी और उन्होंने अजमेर जाकर सेठ नेमिचंदजी सोनीके लेखक द्वारा, जो उससमय भद्रबाहुसंहिताकी प्रतियाँ उतारनेका ही काम कर रहा था, एक प्रति अपने लिए करानेका प्रबंध कर दिया। बहुत दिनोंके इन्तजार और लिखा पढ़ीके बाद वह प्रति देहलीमें बाबाजीके नाम वी. पी. द्वारा आई, जिसको लाला जग्गीमलजीने छुड़ाकर पहाड़ीके मंदिरमें विराजमान कर दिया और आखिर वहाँसे वह प्रति मुझको मिल गई। देखनेसे मालूम हुआ कि यह प्रति कुछ अधूरी है। तब उसके कमती भागकी पूर्ति तथा मिलानके लिए दूसरी पूरी प्रतिके मँगानेकी जरूरत पैदा हुई, जिसके लिए अनेक स्थानोंसे पत्रव्यवहार किया गया। इस



पूरे सेठ हीराचंद्र नेमिचंद्रजी शोलापुरने, पत्र पाते ही, अपने यहाँकी प्रति भेज दी, जो कि इस ग्रंथका पूर्वखंड मात्र है और जिससे मिलानका काम लिया गया । परन्तु इससे कमती भागकी पूर्ति नहीं हो सकी । अतः झालरापाटनसे इस ग्रंथकी पूरी प्रति प्राप्त करनेका फिरसे प्रयत्न किया गया । अबकी बारका प्रयत्न सफल हुआ । गत जुलाई मासके अन्तमें श्रीमान् सेठ विनोदीराम बालचंद्रजीके फर्मके मालिक श्रीयुत सेठ लालचंद्रजी सेठोंने इस ग्रंथकी वह मूल प्रति ही मेरे पास भेज देनेकी कृपा की जिस परसे अनेक प्रतियाँ होकर हालमें इस संहिताका प्रचार होना प्रारंभ हुआ है और इस लिए सेठ साहबकी इस कृपा और उदारताके लिए उन्हें जितना धन्यवाद दिया जाय वह थोड़ा है । जिन जिन महानुभावोंने मेरी इस ग्रंथावलोकनकी इच्छाको पूरा करनेके लिए ग्रंथ भेजने-भिजवाने आदि द्वारा मेरी सहायता की है उन सबका मैं हृदयसे आभार मानता हूँ । इस विषयमें श्रीयुत पं० नाथुरामजी प्रेमीका नाम खास तौरसे उल्लेख योग्य है और वे मेरे विशेष धन्यवादके पात्र हैं; जिनके खास उद्योगसे झालरापाटनकी मूल प्रति उपलब्ध हुई, जिन्होंने ग्रंथ-परीक्षाकी सहायतार्थ अनेक ग्रंथोंको खरीदकर भेजने तककी उदारता दिखलाई और जिनकी कोशिशसे एक अलब्ध ग्रंथकी दक्कन कालिज पूनाकी लायब्रेरीसे भी प्राप्ति हुई । इस प्रकार ग्रंथ-प्राप्तिका यह संक्षिप्त इतिहास देकर अब मैं प्रकृत विषयकी ओर झुकता हूँ:—

### परीक्षाकी जरूरत ।

भद्रबाहु श्रुतकेवलीका अस्तित्व-समय वीर निर्वाण संवत् १३३ से प्रारंभ होकर संवत् १६२ पर्यंत माना जाता है । अर्थात् विक्रम संवत्से ३०८ वर्ष पहले और ईसवी सनसे

३६५ वर्ष पहले तकं भद्रबाहु मौजूद थे और इसलिए भद्रबाहुको समाधिस्थ हुए आज २२८१ वर्ष हो चुके हैं । इस समयसे २९ वर्ष पहलेके किसी समयमें ( जो कि भद्रबाहुके श्रुतकेवली रहनेका समय कहा जाता है ) भद्रबाहु श्रुतकेवली द्वारा इस ग्रंथकी रचना हुई है, ऐसा कुछ विद्वानोंका अनुमान और कथन है । ग्रंथमें, ग्रंथके बननेका कोई सन् संवत् नहीं दिया और न ग्रंथकर्ताकी कोई प्रशस्ति ही लगी हुई है । परंतु ग्रंथकी प्रत्येक सन्धिमें, 'भद्रबाहु' ऐसा नाम जरूर लगा हुआ है; मंगलाचरणमें 'गोवर्धनं गुरुं नत्वा' इस पदके द्वारा गोवर्धन गुरुका, जो कि भद्रबाहु श्रुतकेवलीके गुरु थे, नमस्कारपूर्वक स्मरण किया गया है; कई स्थानों पर 'मैं भद्रबाहु मुनि ऐसा कहता हूँ या कहूँगा' इस प्रकारका उल्लेख पाया जाता है; और एक स्थानपर "भद्रबाहुरुवाचेदं पंचमः श्रुतकेवली+" यह वाक्य भी दिया है । इसके सिवाय ग्रंथमें कहीं कहींपर किसी कथनके सम्बंधमें इस प्रकारकी सूचना भी की गई है कि वह कथन भद्रबाहु श्रुतकेवलीका या द्वादशांगके जाननेवाले भद्रबाहुका है । इन्हीं सब बातोंके कारण जैन समाजके वर्तमान विद्वानोंका उपर्युक्त अनुमान और कथन जान पड़ता है। परन्तु सिर्फ इतने परसे ही इतना बड़ा भारी अनुमान कर लेना बहुत बड़े साहस और जोखमका काम है । खासकर ऐसी हालत और परस्थितिमें जब कि इस प्रकारके अनेक ग्रंथ जात्री सिद्ध किये जा चुके हों । जाली ग्रंथ बनानेवालोंके लिए इस प्रकारका खेल कुछ भी मुश्किल नहीं होता और इसका

+ खंड ३ अध्याय ३ श्लोक १० का पूर्वार्ध ।

दिग्दर्शन पहले तीन ग्रंथोंपर लिखे गये परीक्षा-लेखोंद्वारा भले प्रकार कराया जा चुका है+। भद्रबाहुको हुए आज २३ सौ वर्षका लम्बा चौड़ा समय बीत गया। इस असेमें बहुतसे अच्छे अच्छे विद्वान् और माननीय आचार्य होगये; परन्तु उनमेंसे किसीकी भी कृतिमें इस ग्रंथका नामोल्लेख तक नहीं मिलता और न किसी प्राचीन शिलालेखमें ही इस ग्रंथका उल्लेख पाया जाता है। श्रुतकेवली जैसे आदर्श पुरुष द्वारा रचे हुए एक ऐसे ग्रंथका, जिसका अस्तित्व आजतक चला आता हो, बादको होनेवाले किसी भी माननीय प्राचीन आचार्यकी कृतिमें नामोल्लेख तक न होना संदेहसे खाली नहीं है। साथ ही, श्रवण-बेल्लोलके श्रीयुत पंडित दौर्बलि जिनदास शास्त्री-जीसे मालूम हुआ कि उधर दक्षिणदेशके भंडारोंमें भद्रबाहुसंहिताकी कोई प्रति नहीं है और न उधर पहलेसे इस ग्रंथका नाम ही सुना जाता है। जिस देशमें भद्रबाहुका अन्तिम जीवन व्यतीत हुआ हो, जिस देशमें उनके शिष्यों और प्रशिष्योंका बहुत बड़ा संघ लगभग १२ वर्षतक रहा हो, जहाँ उनके शिष्यसम्प्रदायमें अनेक दिग्गजविद्वानोंकी शाखा प्रशाखायें फैली हों और जहाँपर धवल, महाधवल आदि ग्रन्थोंको सुरक्षित रखनेवाले मौजूद हों, वहाँपर उनकी, अद्यावधिपर्यंत जीवित रहनेवाली, एक मात्रसंहिताका नामतक सुनाई न पड़े, यह कुछ कम आश्चर्यकी बात नहीं है। ऐसा होना कुछ अर्थ रखता है और वह उपेक्षा किये जानेके योग्य नहीं है। इन सब कारणोंसे यह बात बहुत आवश्यक जान पड़ती है कि इस ग्रंथ (भद्रबाहुसंहिता) की परीक्षा

+ इससे पहले उमास्वामि-श्रावकाचार, कुन्द-कुन्द-श्रावकाचार और जिनसेन-त्रिवर्णाचार ऐसे तीन ग्रंथोंकी परीक्षा की जा चुकी है, जिनके पाँच परीक्षा-लेख जैनहितैषीके १० वें भागमें प्रकाशित हुए हैं।

की जाय और ग्रंथके साहित्यकी जाँच द्वारा यह मालूम किया जाय कि यह ग्रंथ वास्तवमें कब बना है और इसे किसने बनाया है। इसी लिए आज पाठकोंका ध्यान इस ओर आकर्षित किया जाता है।

### ग्रन्थकी विलक्षणता ।

जिस समय इस ग्रन्थको परीक्षा-दृष्टिसे अवलोकन करते हैं उस समय यह ग्रन्थ बड़ा ही विलक्षण मालूम होता है। इस ग्रंथमें तीन खंड हैं—१ पूर्व, २ मध्यम, ३ उत्तर और श्लोकोंकी संख्या लगभग सात हजार है। परंतु ग्रंथके अन्तमें जो १८ श्लोकोंका 'अन्तिम वक्तव्य' दिया है उसमें ग्रन्थके पाँच खंड बतलाये हैं और श्लोकोंकी संख्या १२ हजार सूचित की है। यथा:—

प्रथमो व्यवहाराख्यो ज्योतिराख्यो द्वितीयकः ।

तृतीयोपि निमित्ताख्यश्चतुर्थोपि शरीरजः ॥ १ ॥

पंचमोपि स्वराख्यश्च पंचखंडैरियं मता ।

द्वादशसहस्रप्रमितोसंहितेयं जिनोदिता ॥ २ ॥

अन्तिम वक्तव्य अन्तिम खंडके अन्तमें होना चाहिए था; परन्तु यहाँपर तीसरे खंडके अन्तमें दिया है। चौथे पाँचवें खंडोंका कुछ पता नहीं, और न उनके सम्बंधमें इस विषयका कोई शब्द ही लिखा है। किसी ग्रंथमें तीन खंडोंके हानेपरही उनका पूर्व, मध्यम और उत्तर इस प्रकारका विभाग ठीक हो सकता है, पाँच खंडोंकी हालतमें नहीं। पाँच खंडोंके होनेपर दूसरे खंडको 'मध्यम' और तीसरेको 'उत्तरखंड' कहना ठीक नहीं बैठता। पहले और अन्तके खंडोंके बीचमें रहनेसे दूसरे खंडको यदि 'मध्यमखंड' कहा जाय तो इस दृष्टिसे तीसरे खंडको भी 'मध्यमखंड' कहना होगा, 'उत्तरखंड' नहीं। परन्तु यहाँपर पद्यमें भी तीसरे खंडको,

उसके दस अध्यायोंकी सूची देते हुए, 'उत्तर-खंड'ही लिखा है। यथा:—

ग्रहस्तुतिः प्रतिष्ठां च मूलमंत्रर्षिपुत्रिके ।

शास्तिचक्रे क्रियादीपे फलशान्ती दशोत्तरे ॥८॥

इसलिए खंडोंका यह विभाग समुचित प्रतीत नहीं होता। खंडोंके इस विभाग-सम्बंधमें एक बात और भी नोट किये जाने योग्य है और वह यह है कि इस ग्रंथमें पूर्व खंडकी संधि देनेके पश्चात्, दूसरे खंडका प्रारंभ करते हुए, "अथ भद्रबाहु-संहितायां उत्तरखंडः प्रारभ्यते" यह वाक्य दिया है और इसके द्वारा दूसरे खंडको 'उत्तरखंड' सूचित किया है; परन्तु खंडके अन्तमें उसे वही 'मध्यमखंड' लिखा है। हो सकता है कि ग्रंथकर्ताका ग्रंथमें पहले दो ही खंडोंके रखनेका विचार हो और इसी लिए दूसरा खंड शुरू करते हुए उसे 'उत्तरखंड' लिखा हो; परन्तु बादको दूसरा खंड लिखते हुए किसी समय वह विचार बदलकर तीसरे खंडकी जरूरत पैदा हुई हो और इस लिए अन्तमें खंडको 'मध्यमखंड' करार दिया हो और पहले जो उसके लिए 'उत्तरखंड' पद लिखा गया था उसका सुधार करना स्मृतिपथसे निकल गया हो। कुछ भी हो, पर इससे ग्रंथका अव्यवस्थितपना प्रगट होता है। यह तो हुई खंडोंके साधारण विभागकी बात; अब उनके विषय-विभागकी अपेक्षा विशेष नामकरणकी लीजिए। ऊपर उद्धृत किये हुए श्लोक नं० १ में दूसरे खंडका नाम 'ज्योतिष-खंड' और तीसरेका नाम 'निमित्तखंड' दिया है जिससे यह सूचित होता है कि ये दोनों विषय एक दूसरेसे भिन्न अलग अलग खंडोंमें रक्खे गये हैं। परंतु दोनों खंडोंके अध्यायोंका पाठ करनेसे ऐसा मालूम नहीं होता। तीसरे

१ तीसरे खंडके अन्तमें भी उसका नाम 'निमित्तखंड' लिखा है।

खंडमें सिर्फ 'ऋषिपुत्रिका' और 'दीप' नामके दो अध्याय ही ऐसे हैं जिनमें 'निमित्त' का कथन है। बाकीके आठ अध्यायोंमें दूसरी ही बातोंका वर्णन है। इससे पाठक सोच सकते हैं कि इस खंडका नाम कहाँतक 'निमित्त-खंड' हो सकता है। रही दूसरे खंडकी बात। इसमें १ केवलकाल, २ वास्तुलक्षण, ३ दिव्येन्दु-संपदा, ४ चिह्न और ५ दिव्योषधि नामके पाँच अध्याय तो ऐसे हैं जिनका ज्योतिषसे प्रायः कुछ सम्बंध नहीं और 'उल्का' आदि २६ अध्याय तथा शकुन (स्वरादि द्वारा शुभाशुभज्ञान), लक्षण और व्यंजन नामके कई अध्याय ऐसे हैं जो निमित्तसे सम्बंध रखते हैं और उस अष्टांग निमित्तमें दाखिल हैं जिसके नाम 'राजवार्तिक' में इस प्रकार दिये हैं:—

अंतरिक्ष-भौमांग-स्वर-स्वप्न-लक्षण-व्यंजन-छिन्नानि  
धैर्यमहानिमित्तानि ।

इस खंडके शुरूके २६ अध्यायोंको उनकी संधियोंमें दिये हुए 'भद्रबाहुके निमित्ते' इन शब्दों द्वारा निमित्ताध्याय सूचित भी किया है। शेषके अध्यायोंमें एक अध्याय (नं० ३०) का नाम ही 'निमित्त' अध्याय है और उसके प्रतिज्ञा-वाक्यमें भी निमित्त कथनकी प्रतिज्ञा की गई है। यथा:—

अथ वक्ष्यामि केषांचिन्निमित्तानां प्ररूपणं ।

कालज्ञानादिभेदेन यदुक्तं पूर्वसूरिभिः ॥ १ ॥

इस तरह पर इस खंडमें निमित्ताध्यायोंकी बहुलता है। यदि दो निमित्ताध्यायोंके होनेसे ही तीसरे खंडका नाम 'निमित्त' खंड रक्खा गया है तो इस खंडका नाम सबसे पहले 'निमित्त खंड' रखना चाहिए था; परन्तु ऐसा नहीं किया गया। इस लिए खंडोंका यह नामकरण भी समुचित प्रतीत नहीं होता। यहाँ पर पाठकोंको यह जानकर और भी आश्चर्य होगा कि इस खंडके शुरूमें निमित्तग्रंथके कथनके लिए ही



प्रश्न किया गंयां है और उसीके कथनकी प्रतिज्ञा भी की गई है । यथा:—  
 सुखप्राहं लघुग्रंथं स्पष्टं शिष्याहितावहम् ।  
 सर्वज्ञभाषितं तथ्यं निमित्तं तु ब्रवीहि नः ॥ २-१-१४ ॥  
 भवद्विर्येदहं पृथे निमित्तं जिनभाषितम् ।  
 समासव्यासतः सर्वे तन्निबोध यथाविधि ॥ -२-२ ॥

ऐसी हालतमें इस खंडका नाम 'ज्योतिष-खंड' कहना पूर्वापर विरोधको सूचित करता है । खंडोंके इस नामकरणके समान बहुतसे अध्यायोंका नामकरण भी ठीक नहीं हुआ । उदाहरणके तौरपर तीसरे खंडके 'फल' नामके अध्यायको लीजिए । इसमें सिर्फ कुछ स्वप्नों और ग्रहोंके फलका वर्णन है । यदि इतने परसे ही इसका नाम 'फलाध्याय' रक्खा गया तो इससे पहलेके स्वप्नाध्यायको और ग्रहाचार प्रकरणके अनेक अध्यायोंको फलाध्याय कहना चाहिए था । क्योंकि उनमें भी इसी प्रकारका विषय है । बल्कि उक्त फलाध्यायमें जो ग्रहाचारका वर्णन है उसके सब श्लोक पिछले ग्रहाचारसंबंधी अध्यायोंसे ही उठाकर रक्से गये हैं, तो भी उन पिछले अध्यायोंको फलाध्याय नाम नहीं दिया गया । इसलिए कहना पड़ता है कि यह नामकरण भी ठीक नहीं हुआ । इसके सिवाय ग्रंथके आदिमें मंगलाचरणपूर्वक जो प्रतिज्ञा-वाक्य दिया है और जिसे संपूर्ण ग्रंथके लिए व्यापक समझना चाहिए वह इस प्रकार है:—

गोवर्धनं गुरुं नत्वा दृष्ट्वा गौतमसंहिताम् ।

वर्णाश्रमस्थितियुता संहिता वर्ण्यतेऽधुना ॥ ३ ॥

अर्थात्—'गोवर्धन' गुरुको नमस्कार करके और 'गौतमसंहिता' को देखकर अब वर्णों तथा आश्रमोंकी स्थितिवाली संहिताका वर्णन किया जाता है ।

इस प्रतिज्ञा-वाक्यमें 'अधुना' ( अब ) शब्द बहुत स्पष्टकता है और इस बातको सूचित

करता है कि ग्रंथमें पहलेसे कोई कथन चल रहा है जिसके बादका यह प्रकरण है; परन्तु ग्रंथमें इससे पहले कोई कथन नहीं है । सिर्फ मंगलाचरणके दो श्लोक और दिये हैं जो 'नत्वा' और 'प्रणम्य' शब्दोंसे शुरू होते हैं और जिनमें कोई अलग प्रतिज्ञावाक्य नहीं है । इस लिए इन दोनों श्लोकोंसे सम्बंध रखने-वाला यह 'अधुना' शब्द नहीं हो सकता । परन्तु इसे रहने दीजिए और खास प्रतिज्ञा पर ध्यान दीजिए । प्रतिज्ञामें संहिताका अभिधेय-संहिताका उद्देश-वर्णों और आश्रमोंकी स्थितिको बतलाना प्रगट किया है । इस अभिधेयसे दूसरे तीसरे खंडोंका कोई सम्बंध नहीं; खासकर दूसरा 'ज्योतिषखंड' बिल्कुल ही अलग हो जाता है और वह कदापि इस वर्णाश्रमवर्ती संहिताका अंग नहीं हो सकता । दूसरे खंडके शुरूमें, 'अथ भद्रबाहुसंहितायां उत्तरखंडः प्रारभ्यते' के बाद 'अनमः सिद्धेभ्यः, श्रीभद्रबाहवे नमः' ये दो मंत्र देकर, 'अथ भद्रबाहुकृत निमित्तग्रंथः लिख्यते' यह एक वाक्य दिया है । इससे भी इस दूसरे खंडका अलग ग्रंथ होना पाया जाता है । इतना ही नहीं, इस खंडके पहले अध्यायमें ग्रंथके बननेका सम्बंध ( शिष्योंका भद्रबाहुसे प्रश्न आदि ) और ग्रंथके ( दूसरे खंडके ) अध्यायों अथवा विषयोंकी सूची भी दी है जिससे इस खंडके भिन्न ग्रंथ होनेकी और भी अधिकताके साथ पुष्टि होती है । अन्यथा, ग्रंथके बननेकी यह सब सम्बंध-कथा और संहिताके पूरे अध्यायों वा विषयोंकी सूची पहले खंडके शुरूमें दी जानी चाहिए, जहाँ वह नहीं दी गई । यहाँपर खसूसियतके साथ एक खंडके सम्बंधमें वह असम्बद्ध-मालूम होती है । दूसरे खंडमें भी इतनी विशेषता और है कि वह संपूर्ण खंड किसी एक व्यक्ति-

का बनाया हुआ मालूम नहीं होता । उसके आदिके २४ या ज्यादाहसे ज्यादाह २५ अध्यायोंका टाइप और साँचा, दूसरे अध्यायोंसे भिन्न एक प्रकारका है । वे किसी एक व्यक्तिके बनाये हुए जान पड़ते हैं और शेष अध्याय किसी दूसरे तथा तीसरे व्यक्तिके । यही वजह है कि इस खंडमें शुरूसे २५ वें अध्यायतक तो कहीं कोई मंगलाचरण नहीं है; परन्तु २६ वें अध्यायसे उसका प्रारंभ पाया जाता है, जो एक नई और विलक्षण बात है + । आम तौर पर जो ग्रंथकर्ता ग्रंथोंमें मंगलाचरण करते हैं वे ग्रंथकी आदिमें उसे जरूर रखते हैं । एक ग्रंथकर्ता होनेकी हालतमें यह कभी संभव नहीं कि ग्रंथकी आदिमें मंगलाचरण न दिया जाकर ग्रंथके मध्य भागसे भी पीछे उसका प्रारंभ किया जाय । इसके सिवाय इन अध्यायोंकी संधियोंमें प्रायः ' इति ' शब्दके बाद "नैर्ग्रथे भद्रबाहुके निमित्ते" ऐसे विशेष पदोंका प्रयोग पाया जाता है, जो २६ वें अध्यायको छोड़कर संहिता भरमें और किसी भी अध्यायके साथ देखनेमें नहीं आता । और इसलिए यह भेद-भाव भी बहुत सटकता है । संपूर्ण ग्रंथका एक कर्ता होनेकी हालतमें इस प्रकारका भेद भाव नहीं बन सकता । अस्तु । अब एक बात और प्रगट की जाती है जो इस दूसरे खंडकी अध्याय-सूची अथवा विषय-सूचीसे सम्बंध रखती है और वह यह है कि इस खंडके पहले अध्यायमें, क्रमशः कथन करनेके लिए, जो अध्यायों अथवा विषयोंकी सूची दी है उसमें ग्रहयुद्धके बाद ' वातिक ' और वातिकके बाद 'स्वम' का विषय कथन करना लिखा है । यथा:-

× २६ वें अध्यायका वह मंगलाचरण इस प्रकार है:-  
नमस्कृत्य महावीरं सुरासुरनमस्कृतम् ।  
स्वप्रान्यहं प्रवक्ष्यामि शुभाशुभसमीरितम् ॥ १ ॥

\* गन्धर्वनगरं गर्भान् यात्रोत्पातांस्तथैव च ।  
ग्रहचारं पृथक्त्वेन ग्रहयुद्धं च कृत्स्नशः ॥ १६ ॥  
वातिकं चाथ स्वप्रांश्च मुहूर्ताश्च तिथीस्तथा ।  
करणानि निमित्तं च शकुनं पाकमेव च ॥ १७ ॥  
परन्तु कथन करते हुए ' ग्रहयुद्ध ' के बाद ' ग्रहसंयोग अर्धकांड ' नामका एक अध्याय ( नं० २५ ) दिया है और फिर उसके बाद ' स्वप्राध्याय ' का कथन किया है । यद्यपि ' ग्रहसंयोग अर्धकांड ' नामका विषय ग्रहयुद्धका ही एक विशेष है और इस लिए श्लोक नं० १६ में लिये हुए ' कृत्स्नशः ' पदसे उसका ग्रहण किया जा सकता है; परन्तु इस अध्यायके बाद ' वातिक ' नामके अध्यायका कोई वर्णन नहीं है । स्वप्राध्यायसे पहले ही नहीं, बल्कि पीछे भी उसका कहीं कथन नहीं है । इस लिए कथनसे इस विषयका साफ छूट जाना पाया जाता है । इसके आगे, विषय-सूचीमें, श्लोक नं० १७ के बाद ये दो श्लोक और दिये हैं:-

ज्योतिषं केवलं कालं वास्तु दिव्येन्द्रसंपदा ।  
लक्षणं व्यंजनं चिह्नं तथा दिव्यौषधानि च ॥ १५ ॥  
बलाबलं च सर्वेषां विरोधं च पराजयं ।  
तत्सर्वमानुपूर्वेण प्रब्रवीहि महामते ॥ १६ ॥  
इन श्लोकोंमें ' बलाबलं च सर्वेषां ' इस पदके द्वारा पूर्वकथित संपूर्ण विषयोंके बलाबल कथनकी सूचना की गई है; परन्तु कथन करते हुए, अध्याय नं० ४१ और ४२ में सिर्फ ग्रहोंका ही बलाबल दिसलाया गया है । शेष किसी भी विषयके बलाबलका इन दोनों अध्यायोंमें कहीं कोई वर्णन नहीं है और न आगे ही इस विषयका कोई अध्याय पाया जाता है । इसलिए यह कथन अधूरा है और प्रतिज्ञाका एक अंश पालन

\* इससे पहले विषय-सूचीका निम्नश्लोक और है:-  
उल्का समासतो व्यासात्परिवेषांस्तथैव च ।  
वियुतोऽध्रानि संध्याश्च मेघान्वातात्प्रवर्षणम् ॥ १५ ॥

क्रिया गया मालूम होता है। यदि श्लोक नं० १९को १६ के बाद रक्खा जाय तो “ बलाबलं च सर्वेषां ’ इस पदके द्वारा ग्रहोंके बलाबलकथनका बोध हो सकता है। और श्लोक नं० १४ में दिये हुए ‘ सुखग्राह्यं लघुग्रंथं ’ इस पदका भी कुछ अर्थ सध सकता है ( यद्यपि श्रुतकेवलीके सम्बन्धमें लघुग्रंथ होनेकी बात कुछ अधिक महत्त्वकी नहीं समझी जा सकती )। परन्तु ऐसा करनेपर श्लोक नं० १७-१८ और उनके कथन-विषयक समस्त अध्यायोंको अस्वीकार करके-ग्रन्थका अंग न मान कर-ग्रंथसे अलग करना होगा जो कभी इष्ट नहीं हो सकता। इस लिए कथन अधूरा है और उसके द्वारा प्रतिज्ञाका सिर्फ एक अंश पालन किया गया है, यही मानना पड़ेगा। इस प्रकारकी और भी अनेक विलक्षण बातें हैं जिनको इस समय यहाँपर छोड़ा जाता है। इन सब विलक्षणोंसे ग्रंथमें किसी विशेष गोल मालकी सूचना होती है जिसका अनुभव पाठकोंको आगे चलकर स्वतः हो जायगा। यहाँ पर मैं इतना जरूर कहूँगा और इस कहनेमें मुझे जरा भी संकोच नहीं है कि ऐसा असम्बद्ध, अधूरा, अव्यवस्थित और विलक्षणोंसे पूर्ण ग्रंथ भद्रबाहु श्रुतकेवली जैसे विद्वानोंका बनाया हुआ नहीं हो सकता। क्यों नहीं हो सकता ? यद्यपि विद्वानोंको इस बातके बतलानेकी जरूरत नहीं है; वे इस ऊपरके कथन परसे ही सब कुछ अनुभव कर सकते हैं; परन्तु फिर भी चूँकि समाजमें घोर अज्ञानान्धकार फैला हुआ है, अन्धी श्रद्धाका प्रबल राज्य है, गतानुगतिकता चल रही है, स्वतंत्र विचारोंका वातावरण बंद है और कुछ विद्वान् भी उसमें दिशा भूल रहे हैं, इस लिए मैं सविशेष रूपसे इस बातको सिद्ध करनेकी चेष्टा

करूँगा कि यह ग्रंथ भद्रबाहु श्रुतकेवलीका बनाया हुआ नहीं है।

### श्वेताम्बरोंकी मान्यता।

परन्तु इस सिद्ध करनेकी चेष्टासे पहले मैं अपने पाठकोंको यह बतला देना जरूरी समझता हूँ कि यह ग्रंथ ( भद्रबाहुसंहिता ) श्वेताम्बर सम्प्रदायमें भी भद्रबाहु श्रुतकेवलीका बनाया हुआ माना जाता है। श्वेताम्बर साधु मुनि आत्मारामजीने अपने ‘ तत्त्वादर्श ’ के अन्तिम परिच्छेदमें भद्रबाहु श्रुतकेवलीके साथ उसका भी नामोल्लेख किया है और उसे एक ज्योतिष शास्त्र बतलाया है, जिससे इस संहिताके उस दूसरे खंडका अभिप्राय जान पड़ता है जो ऊपर एक अलग ग्रंथ सूचित किया गया है। बम्बईके श्वेताम्बर बुकसेलर शा भीमसिंह माणिकजीने इसी भद्रबाहुसंहिता नामके ज्योतिःशास्त्रका गुजराती अनुवाद संवत् १९५९ में छपाकर प्रसिद्ध किया था; जिसकी प्रस्तावनामें उक्त प्रसिद्धकर्ता महाशयने लिखा है कि:—

“ आ भद्रबाहुसंहिता ग्रंथ जैनना ज्योतिष विषयमां आय ग्रंथ छे. तेमना रचनार श्रीभद्रबाहुस्वामि, चौद पूर्वधर श्रुतकेवली हता. तेमनां वचनो जैनमां आप्त वचनो गणाय छे । ... श्रीभद्रबाहुसंहिता नामना ग्रंथनी महत्त्वता अति छतां आ प्रसिद्ध थयेला भाषांतररूप ग्रंथनी महत्त्वता जो जनसमुदायने अल्प लागे तो तेनो दोष पंचमकालने शिर छे । ”

प्रसिद्धकर्ताके इन वाक्योंसे श्वेताम्बरसम्प्रदायमें ग्रंथकी मान्यताका अच्छा पता चलता है; परन्तु इतना जरूर है कि इस सम्प्रदायमें भी दिग्गम्बर सम्प्रदायके समान, यह ग्रंथ कुछ अधिक प्रचलित नहीं है। इसी लिए श्रीयुत मुनि जिनविजयजी अपने पत्रमें लिखते हैं कि-

१ यह पत्र श्रीयुत पं० नाथूरामजी प्रेमीके नाम लिखा गया है।



“ पाटनके किसी नये या पुराने भंडारमें भद्र-बाहु-संहिताकी प्रति नहीं है । गुजरातके या मारवाड़के अन्य किसी प्रसिद्ध भंडारमें भी इसकी प्रति नहीं है । श्वेताम्बरोंके भद्रबाहुचरितोंमें उनके संहिता बनानेका उल्लेख मिलता है, परन्तु पुस्तक अभीतक नहीं देखी गई । ”

### गुजराती अनुवाद ।

संहिताके इस गुजराती अनुवादके साथ मूलग्रंथ लगा हुआ नहीं है । प्रस्तावनामें लिखा है कि “ यह अनुवाद श्रावक हीरालाल हंस-राजजीका किया हुआ है, जिन्होंने माँगने पर भी मूलग्रंथ नहीं दिया और न प्रयत्न करने पर किसी दूसरे स्थानसे ही मूलग्रंथकी प्राप्ति हो सकी । इससे समूल छापनेकी इच्छा रहते भी यह अनुवाद निर्मूल ही छपा गया है । ” यद्यपि इस अनुवादके सम्बंधमें मुझे कुछ कहनेका अवसर नहीं है; परन्तु सर्व साधारणकी विज्ञप्ति और हितके लिए संक्षेपसे, इतना जरूर कहूँगा कि यह अनुवाद सिरसे पैरतक प्रायः गलत मालूम होता है । इस अनुवादमें ग्रंथके दो स्तवक ( गुच्छक ) किये हैं, जिनमें पहले स्तवकमें २१ अध्यायोंका और दूसरेमें २२ अध्यायोंका अनुवाद दिया है । पहले स्तवकका मिलान करनेसे जान पड़ता है कि अनुवादक जगह जगहपर बहुतसे श्लोकोंका अनुवाद छोड़ता, कुछ कथन अपनी तरफसे मिलाता और कुछ आगे पीछे करता हुआ चला गया है । शुकचारके कथनमें उसने २१४ श्लोकोंके स्थानमें सिर्फ पाँच सात श्लोकोंका ही अनुवाद दिया है । मंगलचार, राहुचार सूर्यचार, चंद्र-चार और ग्रहसंयोग अर्धकाण्ड नामके पाँच अध्यायोंका अनुवाद कृते छोड़ दिया है । उनका ग्रंथमें नाम भी नहीं है । रही दूसरे स्तवककी बात, सो वह बिलकुल ही विलक्षण तथा अनुवादक

द्वारा कल्पित मालूम होता है । संहिताके पहले अध्यायमें ग्रंथ भरमें क्रमशः वर्णनीय विषयोंकी जो उपर्युल्लिखित सूची लगी हुई है और जिसका अनुवाद अनुवादकने भी दिया है उससे इस स्तवकका प्रायः कुछ भी सम्बंध नहीं मिलता । उसके अनुसार इस स्तवकमें मुहूर्त, तिथि, करण, निमित्त, शकुन, पाक, ज्योतिष, काल, वास्तु, इंद्रसंपदा, लक्षण, व्यंजन, चिह्न, ओषधि, सर्व निमित्तोंका बलाबल, विरोध और पराजय, इन विषयोंका वर्णन होना चाहिए था, जो नहीं है । उनके स्थानमें यहाँ राशि, नक्षत्र, योग, ग्रहस्वरूप, केतुको छोड़कर शेष ग्रहोंकी महादशा, राजयोग, दीक्षायोग, और ग्रहोंके द्वादश भावोंका फल, इन बातोंका वर्णन दिया है । चूँकि यह अनुवाद मूलके अनुकूल नहीं था शायद इसी लिए अनुवादकको मूल ग्रंथकी कापी देनेमें संकोच हुआ हो । अन्यथा दूसरी कोई वजह समझमें नहीं आती । प्रकाशकको भी अनुवाद पर कुछ संदेह हो गया है और इसीलिए उन्होंने अपनी प्रस्तावनामें लिखा है कि—

“ आ भाषांतर ‘ खरी भद्रबाहुसंहिता ’ नामना ग्रंथतुं छे एम विद्वानोनी नजरमां आवे तो ते बावतनो मने अति संतोष थशे, परंतु तेथी विरुद्ध जो विद्वानोनी नजरमां आवे तो हुं तो लेशमात्र ते दोषने पात्र नथी. में तो सरल अंतःकरणथी आ ग्रंथ खरा ग्रंथ-तुं भाषांतर छे एम मानी छपाव्यो छे तेम छतां विद्वानोनी नजरमां मारी भूल लागे तो हुं क्षमा मागुं छुं । ”

इस प्रस्तावनामें प्रकाशकजीके उन विचारोंका भी उल्लेख है जो मूलग्रंथके सम्बंधमें इस अनुवाद परसे उनके हृदयमें उत्पन्न हुए हैं और जो इस प्रकार हैं:—

“ श्रीबाराहमिहिरे करेली वाराहीसंहिता अति विस्तारयुक्त ग्रंथ छे, तेनां प्रमाणमां आ उपलब्ध थयेलो भद्रबाहुसंहिता ग्रंथ अति स्वल्प छे. श्रीभद्र-बाहुस्वामि जेवा श्रुतकेवली पुरुषे ज्योतिष विषयनो

रचैलो ग्रंथ आटलो स्वल्प होय एम अंतःकरण कबुल करुंतुं नथी, ते ग्रंथ वाराहीसंहिता करतां पण अति विस्तारवालो होवो जोइए.।”

समझमें नहीं आता कि क्यों हीरालालजीने ऐसा अधूरा, गलत और कल्पित अनुवाद प्रकाशित करनेके लिए दिया और क्यों उसे भी-मसी माणिकजीने ऐसी संदिग्धवस्थामें प्रकाशित किया। यदि सचमुच ही श्वेताम्बरसम्प्रदायमें ऐसी कोई भद्रबाहुसंहिता मौजूद है जिसका उपर्युक्त गुजराती अनुवाद सत्य समझा जाय तो मुझे इस कहनेमें भी कोई संकोच नहीं है कि वह संहिता और भी अधिक आपात्तिके योग्य है।

### ग्रन्थ कब बना ? और किसने बनाया ?

अब यहाँपर, विशेष रूपसे परीक्षाका प्रारंभ करते हुए, कुछ ऐसे प्रमाण पाठकोंके सम्मुख उपस्थित किये जाते हैं जिनसे यह भले प्रकार स्पष्ट हो जाय कि यह ग्रंथ भद्रबाहु श्रुतकेवलीका बनाया हुआ नहीं है और जब उनका बनाया हुआ नहीं है तो यह कब बना है और इसे किसने बनाया है:—

१ इस ग्रंथके दूसरे खंडके पहले अध्यायमें ग्रंथके बननेका जो सम्बंध प्रगट किया है उसमें लिखा है कि,—एक समय राजगृह नगरके पांडुगिरि पर्वत पर अनेक शिष्य—प्रशिष्योंसे घिरे हुए द्वादशांगके वक्ता भद्रबाहु मुनि बैठे हुए थे। उन्हें प्रीतिपूर्वक नमस्कार करके शिष्योंने, दिव्यज्ञानके कथनकी आवश्यकता प्रगट करते हुए, उनसे उस दिव्यज्ञान नामके निमित्त ज्ञानको बतलानेकी प्रार्थना की और साथ ही, उन विषयोंकी नामावली देकर जिनको क्रमशः कथन करनेकी प्रार्थना की गई, उन्होंने नम्रताके साथ अन्तमें यह निवेदन किया:—

सर्वानेतान्यथोद्दिष्टान् भगवन्वक्तुमर्हसि ।

प्रश्नं शुश्रूषवः सर्वे वयमन्ये च साधवः ॥ २० ॥

अर्थात्—‘ हे भगवन् क्या आप कृपाकर इन समस्त पथोद्दिष्ट विषयोंका वर्णन करेंगे ? हम सब शिष्यगण तथा अन्य साधुजन उनके सुननेकी इच्छा रखते हैं । ’ इसके बाद ग्रंथमें दूसरे अध्यायका प्रारंभ करते हुए, जो वाक्य दिये हैं वे इस प्रकार हैं:—

ततः प्रोवाच भगवान् दिग्वासा श्रमणोत्तमः ।

यथावस्थामुविन्यासद्वादशांगविशारदः ॥ १ ॥

भवद्भिर्यदहं पृष्ठे निमित्तं जिनभाषितं ।

समासव्यासतः सर्वं तन्निबोध यथाविधि ॥ २ ॥

अर्थात्—यह सुनकर यथावत् द्वादशांगके ज्ञाता उत्कृष्ट दिग्म्बर साधु भगवान् भद्रबाहु बोले कि ‘ आप लोगोंने संक्षेप-विस्तारसे जो कुछ जिनभाषित निमित्त मुझसे पूछा है उस संपूर्ण निमित्तको सुनिए । ’

एक स्थानपर, इसी खंडके ३६ वें अध्यायमें पुरुषलक्षणोंके बाद स्त्री-लक्षणोंका वर्णन करते हुए यह भी लिखा है:—

कन्या च कीदृशी ग्राह्या कीदृशी च विवर्जिता ।

कीदृशी कुलजा चैव भगवन्वक्तुमर्हसि ॥ १३६ ॥

भद्रबाहुस्वाचरितं भो भव्याः संनिबोधत ।

कन्याया लक्षणं दिव्यं दोषकोशविवर्जितम् ॥ १३७ ॥

अर्थात्—हे भगवन्, क्या आप कृपया यह बतलाएँगे कि ग्राह्य कन्या कैसी होती है, विवर्जिता कैसी और कुलजा किस प्रकारकी होती है ? इस पर भद्रबाहु बोले कि हे भव्यपुरुषो तुम कन्याका दोषजालसे रहित दिव्य लक्षण सुनो । इसके सिवाय इस खंडके बहुतसे श्लोकोंमें ‘भद्रबाहुवचो यथा—’ भद्रबाहुने ऐसा कहा है—इन शब्दोंके प्रयोगद्वारा, यह सूचित किया है कि अमुक अमुक कथन भद्रबाहुके वचनानुसार लिखा गया है । उन श्लोकोंमेंसे दो श्लोक नमूनेके तौर पर इस प्रकार हैं:—

पापासूक्तानु यद्यस्तु यदा देवः प्रवर्षति ।  
 प्रशांतं तद्ग्रंथं विद्याद्भद्रबाहुवचो यथा ॥ ३-६५ ॥  
 योतयन्ती दिशः सर्वा यदा संध्या प्रदृश्यते ।  
 महामेघस्तदा विद्याद्भद्रबाहुवचो यथा ॥ ७-१६ ॥

इस संपूर्ण कथन और कथन-शैलीसे मालूम होता है कि यह ग्रंथ-अथवा कमसे कम इसका दूसरा खंड भले ही भद्रबाहुश्रुत-केवलीके वचनानुसार लिखा गया हो; परन्तु वह खास भद्रबाहु श्रुतकेवलीका बनाया हुआ नहीं है और चूँकि ऊपर भद्रबाहुके कथनके साथ 'प्रोवाच-उवाच' ऐसी परोक्षभूतकी क्रियाका प्रयोग किया गया है, जिसका यह अर्थ होता है कि वह प्रश्नोत्तररूपकी संपूर्ण घटना ग्रंथकर्ताकी साक्षात् अपनी आँखोंसे देखी हुई नहीं है-वह उस समय मौजूद ही न था-उससे बहुत पहलेकी बीती हुई वह घटना है। इसलिए यह ग्रंथ भद्रबाहु श्रुतकेवलीके किसी साक्षात् शिष्य या प्रशिष्यका भी बनाया हुआ नहीं है। इसका सम्पादन बहुत काल पीछे किसी तीसरे ही व्यक्तिद्वारा हुआ है, जिसके समयादिकका निर्णय आगे चलकर किया जायगा। यहाँ पर सिर्फ इतना ही समझना चाहिए कि यह ग्रंथ भद्रबाहुका बनाया हुआ या भद्रबाहुके समयका बना हुआ नहीं है।

२ द्वादशांग वाणी अथवा द्वादशांग श्रुतके विषयमें जो कुछ कहा जाता है और जैन-शास्त्रोंमें उसका जैसा कुछ स्वरूप वर्णित है उससे मालूम होता है कि संसारमें कोई भी विद्या या विषय ऐसा नहीं होता जिसका उसमें पूरा पूरा वर्णन न हो और न दूसरा कोई पदार्थ ही ऐसा शेष रहता है जिसका ज्ञान उसकी परिधिसे बाहर हो। इसलिए संपूर्ण ज्ञान-विज्ञानका उसे एक अनुपम भंडार समझना चाहिए। उसी द्वादशांग श्रुतके असाधारण विद्वान् श्रुतकेवली

भगवान् होते हैं। उनके लिए कोई भी विषय ऐसा बाकी नहीं रहता जिसका ज्ञान उन्हें द्वादशांगको छोड़कर किसी दूसरे ग्रंथ द्वारा सम्पादन करना पड़े। इसलिए उन्हें संपूर्ण विषयोंके पूर्ण ज्ञाता समझना चाहिए। वे, जाननेके मार्ग प्रत्यक्ष परोक्ष-भेदको छोड़कर समस्त पदार्थोंको केवल ज्ञानियोंके समान ही जानते और अनुभव करते हैं। ऐसी हालत होते हुए, श्रुतकेवलीके द्वारा यदि कोई ग्रंथ रचा जाय तो उसमें केवल-ज्ञानीके समान, उन्हें किसी आधार या प्रमाणके उल्लेख करनेकी जरूरत नहीं है और न द्वादशांगको छोड़कर दूसरे किसी ग्रंथसे सहायता लेनेकी जरूरत है। उनका वह ग्रंथ एक स्वतंत्र ग्रंथ होना चाहिए। उसमें, खंडनमंडनको छोड़कर, यदि आधार प्रमाणका कोई उल्लेख किया भी जाय-अपने प्रतिपाद्य विषयकी पुष्टिमें किसी वाक्यके उद्धृत करनेकी जरूरत भी पैदा हो, तो वह केवली और द्वादशांगश्रुतको छोड़कर दूसरे किसी व्यक्ति या ग्रंथसे सम्बंध रखनेवाला न होना चाहिए। ऐसा न करके दूसरे ग्रंथों और ग्रंथ-कर्ताओंका उल्लेख करना, उनके आधार पर अपने कथनकी रचना करना, उनके वाक्योंको उद्धृत करके अपने ग्रंथका अंग बनाना और किसी खास विषयको, उक्त-मताकी दृष्टिसे, उन दूसरे ग्रंथोंमें देखनेकी प्रेरणा करना, यह सब काम श्रुतकेवली पदके विरुद्ध ही नहीं किन्तु उसको बढ़ा लगानेवाला है। ऐसा करना, श्रुत केवलीके लिए, केवली भगवान्, और द्वादशांग श्रुतका अपमान करनेके बराबर होगा, जिसकी श्रुतकेवली जैसे महर्षियों द्वारा कभी आशा नहीं की जा सकती। चूँकि इस ग्रंथमें स्थानस्थान पर भद्रबाहुका ऐसा ही अयुक्ताचरण प्रगट हुआ है इससे मालूम होता है कि यह ग्रंथ



भद्रबाहु श्रुतकेवलीका बनाया हुआ नहीं है। नमूनेके तौरपर यहाँ उसका कुछ थोड़ासा परिचय दिया जाता है। विशेष विचार यथावसर आगे होगा:—

( क ) दूसरे खंडके ३७ वें अध्यायमें, घोड़ोंका लक्षण वर्णन करते हुए, घोड़ोंके अरबी आदि १८ भेद बतलाकर लिखा है कि,—उनके लक्षण नीतिके जाननेवाले 'चंद्रवाहन'ने कहे हैं। यथा:—

ऐरावताश्च काश्मीरा हया अष्टादशस्मृताः ।

तेषां च लक्षणान्युचे नीतिविचंद्रवाहनः ॥ १२६ ॥

इस कथनसे पाया जाता है कि ग्रंथकर्ता ( भद्रबाहु )ने चंद्रवाहनके कथनको द्वादशांगके कथनसे उत्तम समझा है और इसी लिए उसके देखनेकी प्रेरणा की है।

( ख ) तीसरे खंडमें 'शांतिविधान' नामका १० वाँ अध्याय है, जिसमें दो श्लोक इस प्रकारसे पाये जाते हैं:—

परिभाषासमुद्देशे समुद्दिष्टेन लक्षणान् ।

तन्मध्ये कारयेत्कुंडं शांतिहोमक्रियोचितं ॥ १५ ॥

हुताशनस्य मंत्रज्ञः क्रियां संयुक्षणादिकां ।

विदध्यापरिभाषायां प्रोक्तान् विधिना क्रमात् ॥ १६ ॥

इन दोनों श्लोकोंमें 'परिभाषासमुद्देश' नामके किसी ग्रंथका उल्लेख है। पहले श्लोकमें परिभाषासमुद्देशमें कहे हुए लक्षणके अनुसार होमकुंड बनानेकी और दूसरेमें उक्त ग्रंथमें कही हुई विधिके अनुसार संयुक्षणादिक (आग जलाना आदि) क्रिया करनेकी आज्ञा है। इसी खंडके छठे अध्यायमें, यंत्रोंकी नामावली देते हुए, एक 'यंत्रराज' नामके शास्त्रका भी उल्लेख किया है और उसके सम्बंधमें लिखा है कि, इस शास्त्रके जानने मात्रसे बहुधा निमित्तोंका कथन करना आजाता है। यथा:—

यंत्रराजागमे तेषां विस्तारः प्रतिपादितः ।

येन विज्ञानमात्रेण निमित्तं बहुधा बदेत् ॥ २६ ॥

ये दोनों ग्रंथ ( परिभाषासमुद्देश और यंत्र-

राज ) द्वादशांग श्रुतका कोई अंग न होनेसे दूसरे ही विद्वानोंके बनाये हुए ग्रंथ मालूम होते हैं, जिनका यहाँ आदरके साथ उल्लेख किया गया है और जिनका यह उल्लेख, ग्रंथकर्ताकी दृष्टिसे, उनमें द्वादशांगसे किसी विशिष्टताका होना सूचित करता है।

( ग ) पहले खंडके पहले अध्यायमें 'गौतमसंहिता'को देखकर इस संहिताके कथन करनेकी प्रतिज्ञा की गई है। साथ ही दो स्थानोंपर ये वाक्य और दिये हैं:—

१-आचमनस्वरूपभेदा गौतमसंहितातो ज्ञातव्याः ।

२-पात्रभेदा गौतमसंहितायां द्रष्टव्याः । भूम्यादिदानभेदाश्च ग्रंथान्तरात् उत्सेयाः ।

इनमें लिखा है कि ( १ ) आचमनक स्वरूप और उसके भेद गौतमसंहितासे जानने चाहिए। ( २ ) पात्रोंके भेद गौतमसंहितामें देखने चाहिए और भूमि आदि दानके भेद दूसरे ग्रंथोंसे मालूम करने चाहिए। इस संपूर्ण कथनसे 'गौतमसंहिता' नामके किसी ग्रंथका स्पष्टोद्देश पाया जाता है। गौतमका नाम आते ही पाठकोंके हृदयमें भगवान् महावीरके प्रधान गणधर गौतमस्वामीका खयाल आजाना स्वाभाविक है; परन्तु यह सर्वत्र प्रसिद्ध है कि गौतमस्वामीने द्वादशांग सूत्रोंकी रचना की थी। इसके सिवाय उन्होंने संहिता जैसे किसी अनावश्यक पृथक् ग्रंथकी रचना की हो, इस बातको न तो बुद्धि ही स्वीकार करती है और न किसी माननीय प्राचीन आचार्यकी कृतिमें ही उसका उल्लेख पाया जाता है। इस लिए यह 'गौतमसंहिता' गौतमगणधरका बनाया हुआ कोई ग्रंथ नहीं है। यदि ऐसा कहा जाय कि संपूर्ण द्वादशांगसूत्रों या द्वादशांग श्रुतका नाम ही 'गौतमसंहिता' है तो यह बात भी नहीं बन सकती। क्योंकि ऊपर उद्धृत किये हुए दूसरे वाक्यमें 'भूमि आदि

दानके भेदोंको ग्रंथान्तरसे जाननेकी प्रेरणा की गई है, जिससे साफ मालूम होता है कि गौतम-संहितामें उनका कथन नहीं था तभी ऐसा कहनेकी जरूरत पैदा हुई और इसलिए द्वादशांग-के लक्षणानुसार ऐसे अधूरे ग्रंथका नाम, जिसमें दानके भेदोंका भी वर्णन न हो, 'द्वादशांगश्रुत' नहीं हो सकता। बहुत संभव है कि इस संहिताका अवतार भी भद्रबाहुसंहिताके समान ही हुआ हो, अथवा यहाँ पर यह नाम दिये जानेका कोई दूसरा ही कारण हो।

(घ) एक स्थानपर, इस ग्रंथमें, 'जटिल-केश' नामके किसी विद्वान्का उल्लेख मिलता है, जो इस प्रकार है:--

रविवाराद्या क्रमतो वाराः स्युः कथितजटिलकेशादेः ।  
वारा मंदस्य पुनर्दद्यादाशी विषस्यापि ॥३-१०-१७३॥  
इन्द्रानिलयमयक्षत्रितयनदहनाब्धिरक्षसां हरितः ।  
इह कथित जटिलकेशप्रभृतीनां स्युः क्रमेण दिशः-॥१७४॥

इन उल्लेख वाक्योंमें लिखा है कि रविवारा-दिकके क्रमसे वारोंका और इन्द्रादिकके क्रमसे दिशाओंका कथन जटिलकेशादिकका कहा हुआ है, जिसको यहाँ नागपूजाविधिमें, प्रमाण माना है। इससे या तो द्वादशांगश्रुतका इस विषयमें मौन पाया जाता है अथवा यह नतीजा निकलता है कि ग्रंथकर्ताने उसके कथनकी अवहेलना की है।

(ङ) तीसरे खंडके आठवें अध्यायमें उत्पातोंके भेदोंका वर्णन करते हुए लिखा है:—

एतेषां वेदपंचाशद्भेदानां वर्णनं पृथक् ।  
कथितं पंचमे खंडे कुमारैण सुविन्दुना ॥ १४ ॥

अर्थात्—इन उत्पातोंके ५४ भेदोंका अलग अलग वर्णन कुमारविन्दुने पाँचवें खंडमें किया है। इससे साफ जाहिर है कि ग्रंथकर्ताने कुमार-विन्दुके कथनको द्वादशांगसे श्रेष्ठ और विशिष्ट समझा है तभी उसको देखनेकी इस प्रकारसे

प्रेरणा की गई है। साथ ही, यह भी मालूम होता है कि कुमारविन्दुने भी कोई संहिता जैसा ग्रंथ बनाया है जिसमें पाँच खंड जरूर हैं। जैनहितैषीके छठे भागमें 'दिगम्बर जैन-ग्रंथकर्ता और उनके ग्रंथ' नामकी जो बृहत् सूची प्रकाशित हुई है उसमें भी कुमार-विन्दुके नामके साथ 'जिनसंहिता' का उल्लेख किया है। यह संहिता अभीतक मेरे देखनेमें नहीं आई; परंतु जहाँतक मैं समझता हूँ 'कुमारविन्दु' नामके कोई ग्रंथकर्ता जैनविद्वान् भद्रबाहु श्रुत-केवलीसे पहले नहीं हुए। अस्तु। द्वादशांग श्रुत और श्रुतकेवलीके स्वरूपका विचार करते हुए, इन सब कथनोंपरसे यह ग्रंथ भद्रबाहुश्रुतकेवलीका बनाया हुआ प्रतीत नहीं होता।

३ भद्रबाहु श्रुतकेवली राजा श्रेणिकसे लगभग १२५ वर्ष पीछे हुए हैं। इसलिए राजा श्रेणिकसे उनका कभी साक्षात्कार नहीं हो सकता; परन्तु इस ग्रंथके दूसरे खंडमें, एक स्थानपर, दरिद्रयोगका वर्णन करते हुए, उन्हें साक्षात् राजा श्रेणिकसे मिला दिया है और लिख दिया है कि यह कथन भद्रबाहु मुनिने राजा श्रेणिकके प्रश्नके उत्तरमें किया है। यथा:—

अथातः संप्रवक्ष्यामि दारिद्रं दुःखकारणं ।  
लम्नाधिपे रिष्कगते रिष्केशे लग्नमागते ॥अ०४१श्लो०६५॥  
मारकेशयुते दृष्टे जातः स्यान्निर्धनो नरः ।  
भद्रबाहुमुनिप्रोक्तः नृपश्रेणिकप्रश्नतः ॥-६६ ॥

पाठक समझ सकते हैं कि ऐसा मोटा झूठ और ऐसा असत्य उल्लेख क्या कभी भद्रबाहुश्रुतकेवली जैसे मुनियोंका हो सकता है? कभी नहीं। मुनि तो मुनि साधारण धर्मात्मा गृहस्थका भी यह कार्य नहीं हो सकता। इससे ग्रंथकर्ताका, असत्यवक्तृत्व और झुल पाया जाता है। साथ ही, यह भी मालूम होता है कि वे कोई ऐसे ही योग्य व्यक्ति थे जिनको

भद्रबाहु और राजा श्रेणिकके समयतककी भी खबर नहीं थी। हिन्दुओंके यहाँ 'बृहत्पाराशरी होरा' नामका एक बहुत बड़ा ज्योतिषका ग्रंथ है। इस ग्रंथके ३१ वें अध्यायमें, दरिद्रियोगका वर्णन करते हुए, सबसे पहले जो श्लोक दिया है वह इस प्रकार है—

“ लभेशे वै रिष्कगते रिष्केशे लग्नमागते ।

मारकेशयुते दृष्टे जातः स्यान्निर्यनो नरः ॥ १ ॥

ऊपर उद्धृत किये हुए संहिताके दोनों पद्योंमेंसे पहले पद्यका पूर्वार्ध और दूसरे पद्यका उत्तरार्ध अलग कर देनेसे यही श्लोक शेष रह जाता है। सिर्फ 'लभेशे वै' के स्थानमें 'लग्नाधिपे' का परिवर्तन है। इस श्लोकके आगे पीछे लगे हुए उपर्युक्त दोनों आधे आधे पद्य बहुत ही खटकते हैं और असम्बद्ध मालूम होते हैं। दूसरे पद्यका उत्तरार्ध तो बहुत ही असम्बद्ध जान पड़ता है। उसके आगे इस प्रकरणके ९ पद्य और दिये हैं, जो उक्त होराके प्रकरणमें भी श्लोक नं० १ के बाद पाये जाते हैं। इससे मालूम होता है कि संहिताका यह सब प्रकरण उक्त होरा ग्रंथसे उठाकर रक्खा गया है और उसे भद्रबाहुका बनानेकी चेष्टा की गई है। इस प्रकारकी चेष्टा अन्यत्र भी पाई जाती है और इस 'पाराशरी होरा'से और भी बहुतसे श्लोकोंका संग्रह किया गया है जिसका परिचय पाठकोंको अगले लेखमें कराया जायगा।

४ इस ग्रंथके दूसरे ज्योतिषखंडमें—केवलकाल नामके ३४ वें अध्यायमें—पंचम कालका वर्णन करते हुए, शक, विक्रम और प्रथम कल्कीका भी कुछ थोड़ासा वर्णन दिया है जिसका हिन्दी आशय इस प्रकार है—

“ वर्धमानस्वामीको मुक्ति प्राप्त होनेपर ६०५ वर्ष और पाँच महीने छोड़कर प्रसिद्ध शकराजा हुआ (अभवत्)। उससे शक संवत् प्रवर्तगा

( प्रवत्स्यति )। ४७० वर्षसे (?) प्रभु विक्रम राजा उज्जयिनीमें अपना संवत् चलावेगा ( वर्तयिष्यति )। शक राजाके बाद ३९४ वर्ष और सात महीने बीतनेपर सद्धर्मका द्वेषी और ७० वर्षकी आयुका धारक 'चतुर्मुख' नामका पहला कल्की हुआ ( आसीत् )। उसने एक दिन अजितभूम नामके मंत्रीको यह आज्ञा की ( आदिशत् ) कि 'पृथ्वी पर निर्ग्रथमुनि हमारे अधीन नहीं हैं।' उनके पाणिपात्रमें सबसे पहले जो ग्रास रक्खा जाय उसे तुम करके तौर पर ग्रहण करो। इस नरककी कारणभूत आज्ञाको सुनकर मूढबुद्धि मंत्रीने वैसा ही किया ( अकरोत् )। इस उपद्रवके कारण मुनिजन राजासे व्याकुल हुए ( आसन् ), उस उपसर्गको जानकर जिनशासनके रक्षक असुरेन्द्र चतुर्मुखको मार डालेंगे ( हनिष्यन्ति )। तब वह पापात्मा कल्की मरकर अपने पापकी वजहसे समस्त दुःखोंकी खान पहले नरकमें गया ( गतः )। उसी समय कल्कीका जयध्वजनामका पुत्र सुरेन्द्रके भयसे सुरेन्द्रके किये हुए जिनशासनके माहात्म्यको प्रत्यक्ष देखकर और काललब्धिके द्वारा सम्यक्त्वको पाकर अपनी सेना और बन्धुजनादि सहित सुरेन्द्रकी शरण गया ( जगाम ) ॥ ४७-५७ ॥”

ऊपरके इस वर्णनको पढ़कर निःसन्देह पाठकोंको कौतुक होगा! उन्हें इसमें भूत काल और भविष्यत् कालकी क्रियाओंका बड़ा ही विलक्षण योग देखनेमें आयगा। साथ ही, ग्रंथकर्ताकी योग्यताका भी अच्छा परिचय मिल जायगा। परन्तु यहाँ ग्रंथकर्ताकी योग्यताका परिचय कराना इष्ट नहीं है—इसका विशेष परिचय दूसरे लेख द्वारा किया जायगा, यहाँपर सिर्फ यह देखनेका जरूरत है कि इस वर्णनसे ग्रंथके सम्बंधमें किस बात का पता चलता है।



पता इस बातका चलता है कि यह ग्रंथ भद्रबाहु श्रुतकेवलीका बनाया हुआ न होकर शक संवत् ३९५ अथवा विक्रम सं० ५३० से भी पीछेका बना हुआ है। यही वजह है कि इसमें उक्त समयसे पहलेकी घटनाओं (प्रथमकल्कीका होना आदि)का उल्लेख भूतकालकी क्रियाओं द्वारा पाया जाता है। ऊपरका सारा वर्णन भूतकालकी क्रियाओंसे भरा हुआ है-उसका प्रारंभ भी भूतकालकी क्रियासे हुआ है और अन्त भी भूतकालकी क्रियासे-सिर्फ मध्यमें तीन जगह भविष्यत्कालकी क्रियाओंका प्रयोग है जो बिलकुल असम्बद्ध मालूम होता है। इस असम्बद्धताका विशेष अनुभव प्राप्त करनेके लिए मूल श्लोकोंको देखना चाहिए जो इस प्रकार हैं:—

त्यक्त्वा संवत्सरान्पंचाधिकषट्संभितान् ।  
 पंचमासयुतान्मुक्तिं वर्द्धमाने गते सति ॥ ४७ ॥  
 शकराजोऽभवत् ख्यातः तेन शाकः प्रवत्स्यति ।  
 चतुर्वर्षशतैः सप्तत्यधिकैर्विक्रमो नृपः ।  
 उज्जयिन्यां प्रभुः स्वस्य वत्सरं वर्तयिष्यति ॥ ४८ ॥  
 उपसर्गं विदित्वा तं मुनीनामसुराधिपः ।  
 चतुर्मुखं हनिष्यन्ति जिनशासनरक्षकः ॥ ५४ ॥

इनमेंसे दूसरा श्लोक (नं० ४८) वास्तवमें डेढ़ श्लोक है। उसके पूर्वार्धका सम्बंध पहले श्लोक (नं० ४७) से मिलता है; परन्तु शेष दोनों अर्ध भागोंका कोई सम्बंध ठीक नहीं बैठता। 'त्यक्त्वा' शब्दके साथ 'चतुर्वर्षशतैः सप्तत्यधिकैः' इन पदोंका कुछ भी मेल नहीं है। इसी प्रकार 'अभवत्' के साथ 'प्रवत्स्यति' क्रियाका भी कोई मेल नहीं है। प्रवर्तते क्रियाका संबंध ठीक बैठ सकता है। तीसरे श्लोक (नं० ५४) में 'हनिष्यन्ति' यह क्रिया बहुवचनात्मक है और इसका कर्ता 'असुराधिपः' एक वचनात्मक दिया है। इससे क्रियाका यह प्रयोग गलत है। यदि इस क्रियाको एक वच-

नकी क्रिया 'हनिष्यति' समझ लिया जाय तो भी काम नहीं चलता उससे छंदभंग होता है। इस लिए यह क्रिया किसी तरह भी ठीक नहीं बैठती। इसके स्थानमें परोक्षभूतकी क्रियाको लिये हुए 'जघानेति' पदका प्रयोग बहुत ठीक हो सकता है और उससे आगे पीछेका सारा सम्बन्ध मिल जाता है। परंतु यहाँ ऐसा नहीं है। अस्तु। इन्हीं सब बातोंसे यह कथन एक विलक्षण कथन होगया है। अन्यथा, ग्रंथमें, इसके आगे 'जलमंथन' नामके कल्कीका, जिसका अवतार अभीतक भी नहीं हुआ-पाँचवें कालके अन्तमें होना कहा जाता है-जो वर्णन दिया है उसमें इस प्रकारकी विलक्षणता नहीं है। उसका सारा वर्णन भविष्यत् कालकी क्रियाओंको लिये हुए है। तब यह प्रश्न सहज ही उठ सकता है कि इसी वर्णनके साथ यह विलक्षणता क्यों है? इसका कोई कारण जरूर होना चाहिए। मेरे खयालमें कारण यह है कि यह सारा प्रकरण ही नहीं बल्कि संभवतः सारा अध्याय किसी ऐसे पुराणादिक ग्रंथसे उठाकर यहाँ रक्खा गया है जो विक्रम संवत् ५३० से बहुत पीछेका बना हुआ था। ग्रंथकर्ताने ऊपरके वर्णनका भद्रबाहुके साथ सम्बंध मिलाने और उसे भद्रबाहुकी भविष्यद्वणी प्रगट करनेके लिए उसमें भविष्यत्कालकी क्रियाओंका परिवर्तन किया है। परंतु मालूम होता है कि वह सब क्रियाओंको यथेष्ट रीतिसे बदल नहीं सका। इसीसे इस वर्णनमें इस प्रकारकी विलक्षणता और असम्बद्धताका प्रादुर्भाव हुआ है। मेरा यह उपर्युक्त खयाल और भी दृढ़ताको प्राप्त होता है। जब कि इस अध्ययके अन्तमें यह श्लोक देखनको मिलता है:—

इत्येतत्कालचक्रं च केवलं भ्रमणान्वितं ।

षडभेदं संपरिज्ञायशिवं साधयतं नृप ॥ १२४ ॥

इस श्लोकमें लिखा है कि—हे राजन् इस प्रकारसे केवल भ्रमणको लिये हुए इस छह भेदोंवाले कालचक्रको भले प्रकार जानकर तुम अपना कल्याण साधन करो । यहाँ पर पाठकोंको यह बातला देना जरूरी है कि इस ग्रंथमें इससे पहले किसी राजाका कोई संबंध नहीं है और न किसी राजाके प्रश्नपर इस ग्रंथकी रचना की गई है, जिसको सम्बोधन करके यहाँपर यह वाक्य कहा जाता । इसलिए यह वाक्य यहाँ पर बिलकुल असम्बद्ध है और इस बातको सूचित करता है कि यह प्रकरण किसी ऐसे पुराणादिक ग्रंथसे उठाकर रक्खा गया है जो वि० सं० ५३० के बादका बना हुआ है और जिसमें किसी राजाको लक्ष्य करके अथवा उसके प्रश्नपर इस सारे कथनकी रचना की गई है और इसलिए यह उस ग्रंथसे भी बादका बना हुआ है ।

५ एक स्थानपर, दूसरे खंडमें, निमित्ताध्यायका वर्णन करते हुए, ग्रंथकर्ताने यह प्रतिज्ञा—वाक्य दिया है:—

पूर्वाचार्यैथथा प्रोक्तं दुर्गाद्येलादिभिर्यथा ।

गृहीत्वा तदभिप्रायं तथा रिष्टं वदाम्यहम् ॥३०-१०॥

अर्थात्—‘दुर्गादि और एलादिक नामके पूर्वाचार्योंने रिष्टसंबंधमें जैसा कुछ वर्णन किया है उसके अभिप्रायको लेकर मैं वैसे ही यह रिष्टका कथन करता हूँ’ । इस प्रतिज्ञावाक्यसे स्पष्ट है कि ग्रंथकर्ताने दुर्गादिक और एलादिक नामके आचार्योंको ‘पूर्वाचार्य’ माना है । वे ग्रंथकर्तासे पहले होगये हैं और उन्होंने रिष्ट या अरिष्टके सम्बंधमें कोई ग्रंथ लिखे हैं जिनके आधार ग्रंथकर्ताने यहाँ कथनकी प्रतिज्ञा की है । ऐसी हालतमें उक्त आचार्यों और उनके ग्रंथोंकी खोज लगानेकी जरूरत पैदा

हुई । खोज लगानेसे मालूम हुआ कि भद्रबाहु श्रुतकेवलीसे पहले इस नामके कोई भी उल्लेख योग्य आचार्य नहीं हुए । एक एलाचार्य भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यका दूसरा नाम है । दूसरे एलाचार्य चित्रकूटपुरानिवासी कहे जाते हैं जिनसे वीरसेनाचार्यने सिद्धान्तशास्त्र पढ़ा था और जिनका उल्लेख इन्द्रनन्दिने अपने ‘श्रुतावतार’ ग्रंथमें किया है । तीसरे एलाचार्य भट्टारक हैं, जिनका नाम ‘दि० जैनग्रंथकर्ता और उनके ग्रन्थ’ नामकी सूचीमें दर्ज है, और जिनके नामके साथ उनके बनाये हुए ग्रंथोंमें सिर्फ ‘ज्वालामालिनी कल्प’ नामके किसी ग्रंथका उल्लेख है । ये तीनों एलाचार्य भद्रबाहु श्रुतकेवलीसे उत्तरोत्तर कई कई शताब्दी बाद हुए माने जाते हैं । इनमेंसे किसी भी आचार्यका बनाया हुआ रिष्ट-विषयका कोई ग्रंथ उपलब्ध नहीं हुआ । ‘दुर्ग’ नामके आचार्यकी खोज लगाते हुए ‘जैनग्रंथावली’ से मालूम हुआ कि ‘दुर्गदेव’ नामके किसी जैनाचार्यने ‘रिष्टसमुच्चय’ नामका कोई ग्रंथ बनाया है और वह ग्रंथ जैनियोंके किसी भी प्रसिद्ध भंडारमें न होकर ‘दक्कन कालिज पूना’ की लायब्रेरीमें मौजूद है । चूँकि यह ग्रंथ उसी विषयसे सम्बंध रखता था जिसके कथनकी प्रतिज्ञाका ऊपर उल्लेख है इस लिए इसको मँगानेकी कोशिश की गई । अन्तको, श्रीयुत पं० नाथूरामजी प्रेमीने अपने मित्र श्रीयुत मोहनलाल दलीचंदजी देसाई, वकील बम्बई हाईकोर्टकी मार्फत पूनाकी लायब्रेरीसे उक्त ग्रंथको मँगाकर उसे मेरे पास भेज देनेकी कृपा की । देखनेसे मालूम हुआ कि ग्रंथ प्राकृत भाषामें है, उसमें २६० ( २५८+२ ) गाथायें हैं और उसकी वह प्रति एक पुरानी और जीर्णशीर्ण है । बड़ी सावधानीसे संहिताके साथ उसका मिलान किया गया और मिलानसे

निश्चय हुआ कि, ऊपरके प्रतिज्ञावाक्यमें जिन 'दुर्गा' नामके आचार्यका उल्लेख है वे निःसन्देह ये ही 'दुर्गादेव' हैं और इनके इसी 'रिष्टसमुच्चय' शास्त्रके आधार पर संहिताके इस प्रकरणकी प्रधानतासे रचना हुई है। वास्तवमें इस शास्त्रकी १०० से भी अधिक गाथाओंका आशय और अनुवाद इस संहितामें पाया जाता है। अनुवादमें बहुधा मूलके शब्दोंका अनुकरण है और इस लिए अनेक स्थानों पर, जहाँ छंद भी एक है, वह मूलका छायामात्र हो गया है। नमूनेके तौर पर यहाँ दोनों ग्रंथोंसे कुछ पद्य उद्धृत किये जाते हैं जिससे इस विषयका पाठकोंको अच्छा अनुभव हो जायः—

१-करचरणेषु अ तोयं, दिन्नं परिसुसइ जस्स निम्भंतं ।  
सो जीवइ दिवह तयं, इह कहिअं पुव्वसूरीहिं ॥ ३१ ॥  
(रिष्टस०)

पाणिपादोपरि क्षिप्तं तोयं शीघ्रं विशुष्यति ।  
दिनत्रयं च तस्यायुः कथितं पूर्वसूरिभिः ॥ १८ ॥  
(भद्र० संहिता)

२-बीआए ससिबिंबं, नियइ तिसिगं च सिंगपरिहीणं ।  
उवरम्मि धूमछायं, अह खंडं सो न जीवेइ ॥ ६५ ॥  
(रि० सं)

द्वितीयायाः शशीबिंबं, पश्येत्रिशृंगं च शृंगपरिहीनं ।  
उपरि सधूमच्छायं, खंडं वा तस्य गतमायुः ॥ ४३ ॥  
(संहिता)

३-अहव मयंकविहीणं, मलिणं चंद्रं च पुरिससारित्थं ।  
सो जीवइ मासमेगं, इय दिट्ठं पुव्वसूरीहिं ॥ ६६ ॥  
(रि० सं)

अथवा मृगांकहीनं, मलिनं चंद्रं च पुरुषसाहस्यं ।  
प्राणी पश्यति नूनं, मासादूर्ध्वं भवान्तरं याति ॥ ४४ ॥  
(संहि०)

४-इय मंतियसव्वंगो, मंती जोएउ तत्थ वर छायां ।  
सुहदियहे पुव्वण्हे, जलहरपवणेण परिहीणे ७१ (रि०)  
इति मंत्रितसवांगो, मंत्री पश्यन्नरस्य वरछायां ।  
शुभीदवसे पूर्वाण्हे, जलधरपवनेन परिहीनं ४९ (संहिता)

दुर्गादेवका यह 'रिष्टसमुच्चय' शास्त्र विक्रम संवत् १०८९ का बना हुआ है। जैसा कि इसकी प्रशस्तिमें दिये हुए निम्न पद्यसे प्रगट है:— संवत्थर इगसहसे बोलिणे नवयसीइ संजुत्ते सावणसुक्के यारसि दिवहम्मि मूल रिक्खम्मि २५७ दुर्गादेवका समय मालूम हो जानेसे, ग्रंथमुखसे ही, यह विषय बिलकुल साफ हो जाता है और इसमें कोई संदेह बाकी नहीं रहता कि यह भद्रबाहुसंहिता ग्रंथ भद्रबाहु श्रुतकेवलीका बनाया हुआ नहीं है, न उनके किसी शिष्य-प्रशिष्यका बनाया हुआ है और न वि० सं० १०८९ से पहलेहीका बना हुआ है। बल्कि उक्त संवत्से बादका— विक्रमकी ११ वीं शताब्दीसे पीछेका— बना हुआ है और किसी ऐसे व्यक्तिद्वारा बनाया गया है जो विशेष बुद्धिमान न हो कर साधारण मोटी अकलका आदमी था। यही वजह है कि उसे ग्रंथमें उक्त प्रतिज्ञावाक्यको रसते हुए यह खयाल नहीं आया कि मैं इस ग्रंथको भद्रबाहु श्रुतकेवलीके नामसे बना रहा हूँ—उसमें १२ सौ वर्ष पीछे होनेवाले विद्वानका नाम और उसके ग्रंथका प्रमाण न आना चाहिए। मालूम होता है कि ग्रंथकर्ताने जिस प्रकार अन्य अनेक प्रकरणोंको दूसरे ग्रंथोंसे उठाकर रक्खा है उसी प्रकार यह रिष्टकथन या कालज्ञानका प्रकरण भी उसने किसी दूसरे ग्रंथसे उठाकर रक्खा है और उसे इसके उक्त प्रतिज्ञावाक्यको बदलने या निकाल देनेका स्मरण नहीं रहा। सच है 'झूठ छिपायेसे नहीं छिपता'। फारसीकी यह कहावत यहाँ बिलकुल सत्य मालूम होती है कि 'दरोग गोरु हाफ़ज़ा न बाशद'—अर्थात् असत्यवक्तारोंमें धारणा और स्मरणशक्तिकी त्रुटि होती है। वह प्रायः पूर्वापरका यथेष्ट संबंध सोचे बिना मुँहसे जो आता है निकाल देता है। उसे अपना

असत्य छिपानेके लिए आगे पीछेके कथनका ठीक सम्बन्ध उपस्थित नहीं रहता—इस बातका पूरा खयाल नहीं रहता कि मैंने अभी क्या कहा था और अब क्या कह रहा हूँ । मेरा यह कथन पहले कथनके अनुकूल है या प्रतिकूल—इस लिए वह पकड़में आ जाता है और उसका सारा झूठ खुल जाता है । ठीक यही हालत कूट लेखकों और जाली ग्रंथ बनानेवालोंकी होती है । वे भी असत्यवक्ता हैं । उन्हें भी इस प्रकारकी बातोंका पूरा ध्यान नहीं रहता और इस लिए एक न एक दिन उन्हींकी कृतिसे उनका वह सब कूट और जाल पकड़ा जाता है और सर्व साधारण पर खुल जाता है । यही सब यहाँ पर भी हुआ है । इसमें पाठकोंको कुछ आश्चर्य करनेकी जरूरत नहीं है । आश्चर्य उन विद्वानोंकी बुद्धि पर होना चाहिए जो ऐसे ग्रंथको भी भद्रबाहु श्रुतकेवलीका बनाया हुआ मान बैठे हैं । अस्तु । अब इस लेखमें आगे यह दिखलाया जायगा कि यह ग्रंथ विक्रमकी ११ वीं शताब्दीसे कितने पीछेका बना हुआ है ।

६ वसुनन्दि आचार्यका बनाया हुआ ' प्रतिष्ठासारसंग्रह ' नामका एक प्रसिद्ध प्रतिष्ठापाठ है । इस प्रतिष्ठापाठके दूसरे परिच्छेदमें ६२ श्लोक हैं, जिनमें ' लग्नशुद्धि ' का वर्णन है और तीसरे परिच्छेदमें ८८ श्लोक हैं, जिनमें ' वास्तुशास्त्र ' का निरूपण है । दूसरे परिच्छेदके श्लोकोंमेंसे लगभग ५० श्लोक और तीसरे परिच्छेदके श्लोकोंमेंसे लगभग ६० श्लोक इस ग्रंथके दूसरे संडमें क्रमशः ' मुहूर्त ' और ' वास्तु ' नामके अध्यायोंमें उठाकर रक्खे गये हैं । उनमेंसे दो श्लोक नमूनेके तौर पर इस प्रकार हैं:—

पुनर्वसुत्तरापुष्पहस्तश्रवणरेवती—।

रोहिण्यश्विभृगक्षीषु प्रतिष्ठां कारयेत्सदा ॥२७-११॥

जन्मनिष्कमणस्थानज्ञाननिर्वाणभूमिषु ।

अन्येषु पुण्यदेशेषु नदीकूलनगेषु च ॥ ३५-४ ॥

इनमेंसे पहला श्लोक उक्त प्रतिष्ठापाठके दूसरे परिच्छेदमें नं० ५ पर और दूसरा श्लोक तीसरे परिच्छेदमें नं० ३ पर दर्ज है । इससे प्रगट है कि यह ग्रंथ ' प्रतिष्ठासारसंग्रह ' से पीछेका बना हुआ है । इस प्रतिष्ठापाठके कर्ता वसुनन्दिका समय विक्रमकी १२ वीं १३ वीं शताब्दी पाया जाता है । इसलिए यह ग्रंथ, जिसमें वसुनन्दिके वचनोंका उल्लेख है, वसुनन्दिसे पहलेका न होकर विक्रमकी १२ वीं शताब्दीके बादका बना हुआ है ।

७ पंडित आशाधर और उनके बनाये हुए ' सागारधर्माभूत ' से पाठक जरूर परिचित होंगे । सागारधर्माभूत अपने टाइपका एक अलग ही ग्रंथ है । इस ग्रंथके बहुतसे पद्य संहिताके पहले संडमें पाये जाते हैं, जिनमेंसे दो पद्य इस प्रकार हैं:—

धर्मं यशः शर्म च सेवमानाः

केप्येकशः जन्म विदुः कृतार्थम् ।

अन्ये द्विशो विद्य वयं त्वमोघा—

न्यहानि यान्ति त्रयसेवयैव ॥ ३-३६३ ॥

निर्व्याजया मनोवृत्त्या सानुवृत्त्या गुरोर्मेनः ॥

प्रविश्य राजवच्छश्वदिनयेनानुरंजयेत् ॥ १०-७२

इनमेंसे पहला पद्य सागारधर्माभूतके पहले अध्यायका १४ वीं और दूसरा पद्य दूसरे अध्यायका ४६ वीं पद्य है । इससे साफ जाहिर है कि यह संहिता सागारधर्माभूतके बादकी बनी हुई है । सागारधर्माभूतको पं० आशाधरजीने टीकासहित बनाकर विक्रमसंवत् १२९६ में समाप्त किया है । इसलिए यह संहिता भी उक्त संवत्के बादकी—विक्रमकी १३ वीं शताब्दीसे पीछेकी—बनी हुई है ।

८ इस ग्रंथके तीसरे संडमें, ' फल ' नामक नौवें अध्यायका वर्णन करते हुए, सबसे पहले जो श्लोक दिया है वह इस प्रकार है:—

प्रणम्य वर्धमानं च जगदानन्ददायकम् ।

प्रणिधाय मनो राजन् सर्वेषां शृणु तत्फलम् ॥ १ ॥

यह श्लोक बड़ा ही विलक्षण है। इसमें लिखा है कि-‘जगतको आनन्द देनेवाले वर्धमानको नमस्कार करके ( क्या कहता हूँ, ऐसी प्रतिज्ञा, आगे कुछ नहीं ) हे राजन् तुम उन सबका फल चित्त लगाकर सुनो।’ परन्तु इससे यह मालूम न हुआ कि राजा कौन, जिसको सम्बोधन करके कहा गया और वे सब कौन, जिनका फल सुनाया जाता है। ग्रंथमें इससे पहले कोई भी ऐसा प्रकरण या प्रसंग नहीं है जिसका इस श्लोकके ‘राजन्’ और ‘तत्’ शब्दोंसे सम्बन्ध हो सके। इस लिए यह श्लोक यहाँपर बिल्कुल भद्दा और निरा असम्बद्ध मालूम होता है। इसके आगे ग्रंथमें, श्लोक नं० १८ तक उन १६ स्वप्नोंके फलका वर्णन है जिनका सम्बन्ध राजा चंद्रगुप्तसे कहा जाता है और जिनका उल्लेख रत्ननन्दिने अपने ‘भद्रबाहुचरित्र’ में किया है। स्वप्नोंका यह सब फल-वर्णन प्रायः उन्हीं शब्दोंमें दिया है जिनमें कि वह उक्त भद्रबाहुचरित्रके दूसरे परिच्छेदमें श्लोक नं० ३२ से ४८ तक पाया जाता है। सिर्फ किसी किसी श्लोकमें दो एक शब्दोंका अनावश्यक परिवर्तन किया गया है। जैसा कि नीचे लिखे दो नमूनोंसे प्रगट है:—

१-रवेरस्तमनालोकात्कालेऽत्र पंचमेऽशुभे ।

एकादशांगपूर्वादिश्रुतं हीनत्वमेध्यति ॥ ३२ ॥

—भद्रबाहुचरित्र ।

भद्रबाहुसंहिताके उक्त ‘फल’ नामके अध्यायमें यही श्लोक नं० ३ पर दिया है। सिर्फ ‘रवेरस्तमनालोकात्’ के स्थानमें ‘स्वप्ने सूर्यास्तावलोकात्’ बदला हुआ है।

२-तुंगमातंगमासीनशाखागुणिरिक्षणात् ।

राज्यहीना विधास्यन्ति कुकुला न च बाहुजाः ॥ ४३ ॥

भद्रबाहुसंहिताके उक्त अध्यायमें यह भद्रबाहुचरित्रका श्लोक नं० १३ पर दिया है। सिर्फ

‘बाहुजाः’ के स्थानमें उसका पयायवाचक पद ‘क्षत्रियाः’ बनाया गया है। भद्रबाहुचरित्रमें, इस फलवर्णनसे पहले, राजा चंद्रगुप्त और उसके स्वप्नादिकोंका सब संबंध देकर उसके बाद नीचे लिखा वाक्य दिया है, जिससे वहाँ पर ‘राजन्’ और ‘तत्’ शब्दोंका सम्बन्ध ठीक बैठता है और उस वाक्यमें भी कोई असम्बद्धता मालूम नहीं होती:—

प्रणिधाय मनो राजन् समाकर्णय तत्फलम् ॥ ३ ॥

यह वही वाक्य है जो जरासे गैरजरूरी परिवर्तनके साथ ऊपर उद्धृत किये हुए श्लोक नं० १ का उत्तरार्थ बनाया गया है। इन सब बातोंसे जाहिर है कि यह सब प्रकरण रत्ननन्दिके भद्रबाहुचरित्रसे उठाकर यहाँ रक्खा गया है और इसलिए यह ग्रंथ उक्त भद्रबाहुचरित्रसे पीछेका बना हुआ है। रत्ननन्दिका भद्रबाहुचरित्र विक्रमकी १६ वीं शताब्दीके अन्तका या १७ वीं शताब्दीके शुरूका बना हुआ माना जाता है। परन्तु इसमें तो किसीको कोई सन्देह नहीं है कि वह वि० सं० १५२७ के बाद का बना हुआ जरूर है। क्योंकि उसके चौथे अधिकांशमें इस संवत्का लुंकामत (दूँदियामत) की उत्पत्तिकथनके साथ उल्लेख किया है\*। ऐसी हालतमें यह ग्रंथ भी वि० सं० १५२७ से पीछेका बना हुआ है, इसमें कुछ संदेह नहीं हो सकता।

९ हिन्दुओंके ज्योतिष ग्रंथोंमें ‘ताजिक नीलकंठी’ नामका एक प्रसिद्ध ग्रंथ है। यह अनन्तदैवज्ञके पुत्र ‘नीलकंठ’ नामके प्रसिद्ध विद्वानका बनाया हुआ है। इसके बहुतसे पद्य संहिताके दूसरे खंडमें—‘विरोध’ नामके ४३ वें अध्यायमें—कुछ परिवर्तनके साथ पाये जाते

\* यथा:— मृते विक्रमभूपाले सप्तविंशतिसंयुते दशपंचशतेऽब्दानामतीते शृणुता परम् ॥ १५७ ॥ लुंकामतमभूदेकं लोपकं धर्मकर्मणः । देशेऽत्रगौर्जरे ख्याते विद्वेत्ताजितनिर्भरे ॥ १५८ ॥

हैं। यहाँ पर उनमेंसे कुछ पद्य, उदाहरणके तौर पर, उन पद्योंके साथ प्रकाशित किये जाते हैं जिन परसे वे कुछ परिवर्तन करके बनाये गये मालूम होते हैं:—

१-कूरमूसरिफोऽब्देशो जन्मेशः कूरितः शुभैः ।  
कंबूलेपि विपन्मृत्युरित्थमन्याधिकारतः ॥२-३-४ ॥  
-ताजिक नीलकंठी ।

अब्देशः कूरमूसरिफः शुभैर्जन्मेशः कूरितः ।  
कंबूलेपि विपन्मृत्युरित्थं वर्षेशमुन्थहे ॥ ४८ ॥  
-भ० संहिता ।

२-अस्तगौ मुथहालमनाथौ मंदेक्षितौ यदा ।  
सर्वनाशोमृतिः कष्टमाधिव्याधिभयं भवेत् ॥-५ ॥  
सर्वनाशो मृतिः कष्टमाधिभयं भवेत् ॥ ५ ॥  
-ता० नी०

यदा मंदेक्षितौ मुथहा-लमनाथावयोगतौ ।  
सर्वनाशो मृतिः कष्टमाधिव्याधिरुजां भयं ॥ ४७ ॥  
-भ० सं०

गुरुः केन्द्रे त्रिकोणे वा पापादृष्टः शुभेक्षितः ।  
लमचन्द्रेन्थिहारिष्टं विनश्यार्थसुखं दिशेत् ॥ ४-२ ॥  
-ता० नी०

पापादृष्टो गुरुः केन्द्रे त्रिकोणे वा शुभेक्षितः ।  
लमसोमेन्थिहारिष्टं विनश्यार्थसुखं दिशेत् ॥ ५६ ॥  
-भ० सं०

ऊपरके पद्योंसे पाठकोंको दो बातें मालूम होंगी । एक यह कि नीलकंठीके पद्योंसे संहिताके पद्योंमें जो भेद है वह प्रायः नीलकंठीके शब्दोंको आगे पीछे कर देने या किसी शब्दके स्थानमें उसका पर्यायवाचक शब्द रख देने मात्रसे उत्पन्न किया गया है और इससे परिवर्तनका अच्छा अनुभव हो जाता है । इस परिवर्तनके द्वारा दूसरे पद्यके पहले चरणमें एक अक्षर बढ़ गया है—८ के स्थानमें ९ अक्षर हो गये हैं—और चौथे चरणमें 'व्याधि' के होते हुए 'रुज्' शब्द व्यर्थ पड़ा है । दूसरी बात यह है कि इन पद्योंमें मूसरिफ ( मुशरिफ ), कंबूल ( कंबूल ), मुथहा, मुन्थहा ( मुन्तिहा ), इन्थिहा ( इन्तिहा ) ये शब्द जो पाये जाते हैं वे संस्कृत भाषाके शब्द नहीं हैं । अरबी-फारसी भाषाके

परिवर्तित रूप हैं । ताजिकग्रंथोंकी उत्पत्ति यवन-ज्योतिष परसे हुई है, जिसको बहुत अधिक समय नहीं बीता, इसलिए इन शब्दोंको यवन-ज्योतिषमें प्रयुक्त संज्ञाओंके अपभ्रंशरूप समझना चाहिए । दूसरे पद्योंमें 'इत्थिस्ताल' ( इत्तिसाल ) आदि और भी इस प्रकारके अनेक शब्दोंका प्रयोग पाया जाता है । अस्तु । इन सब बातोंसे मालूम होता है कि संहितामें यह सब प्रकरण या तो नीलकंठीसे परिवर्तित करके रक्खा गया है अथवा किसी ऐसे ग्रंथसे उठाकर रक्खा गया है जो नीलकंठी परसे बना है और इस लिए यह संहिता 'ताजिक नीलकंठी' से पीछे बनी हुई है, इसमें कोई संदेह नहीं रहता । नीलकंठीका समय विक्रमकी १७ वीं शताब्दीका पूर्वार्ध है । उनके पुत्र गोविन्द दैवज्ञने, अपनी ३४ वर्षकी अवस्थामें, 'मुहूर्ताचिन्तामणि' पर 'पीयूषधारा' नामकी एक विस्तृत टीका लिखी है और उसे शक सं० १५२५ अर्थात् वि० से० १६६० में बनाकर समाप्त किया है । इस समयसे लगभग २० वर्ष पहलेका समय ताजिक नीलकंठीके बननेका अनुमान किया जाता है और इस लिए कहना पड़ता है कि यह संहिता विक्रम सं० १६४० के बादकी बनी हुई है ।

१० इस ग्रन्थके दूसरे खंडमें, २७ वें अध्यायका प्रारंभ करते हुए सबसे पहले यह वाक्य दिया है:—

“ तत्रादौ च मुहूर्तानां संग्रहः क्रियते मया ॥ ”

यद्यपि इस वाक्यमें आये हुए 'तत्रादौ' शब्दोंका ग्रंथ भरमें पहलेके किसी भी कथनसे कोई सम्बंध नहीं है और इस लिए वे कथनकी असम्बद्धताको प्रगट करते हुए इस बातको सूचित करते हैं कि यह वाक्य किसी दूसरे

१ इसका अर्थ होता है-वहाँ, आदिमें, उसके आदिमें, अथवा उनमें सबसे पहले ।



ग्रंथसे उठाकर रक्खा गया है जहाँ उसे उक्त ग्रंथके कर्ताने अपने प्रकरणानुसार दिया होगा। परन्तु इसे छोड़कर इस वाक्यमें मुहूर्तोंका संग्रह करनेकी प्रतिज्ञा की गई है। लिखा है कि मेरे द्वारा मुहूर्तोंका संग्रह किया जाता है, अर्थात् मैं इस अध्यायमें मुहूर्तोंका संग्रह करता हूँ। यह वाक्य श्रुतकेवलीका बतलाया जाता है। ऐसी हालतमें पाठक सोचें और समझें कि यह कैसा अनोखा और असमंजस मालूम होता है। श्रुतकेवली और मुहूर्तोंका संग्रह करें? जो स्वयं द्वादशांगके पाठी और पूर्ण ज्ञानी हों—जिनका प्रत्येक वाक्य संग्रह किये जानेके योग्य हो—वे खुद ही इधर उधरसे मुहूर्तोंके कथनको इकट्ठा करते फिरें! यह कभी नहीं हो सकता। वास्तवमें यह सारा ही ग्रंथ भद्रबाहु श्रुतकेवलीका बनाया हुआ न होकर इधर उधरके प्रकरणोंका एक बेढंगा संग्रह है—जैसा कि ऊपर दिखलाया गया है और अगले लेखोंमें, असम्बद्ध विरुद्धादि कथनोंका उल्लेख करते हुए और भी अच्छी तरहसे दिखलाया जायगा। इसलिए इस ग्रंथमें उक्त प्रतिज्ञाके अनुसार मुहूर्तोंका भी अनेक ग्रंथों परसे संग्रह किया गया है। अर्थात् दूसरे ग्रंथोंके वाक्योंको उठा उठाकर रक्खा है। उन ग्रंथोंमें 'मुहूर्तचिन्तामणि' नामका भी एक प्रसिद्ध ग्रंथ है, जिसे नीलकंठके छोटे भाई रामदैवज्ञने शक संवत् १५२२ (वि० सं० १६५७) में निर्माण किया है। इस ग्रंथसे भी अनेक पद्य उठाकर उक्त अध्यायमें रक्खे गये हैं, जिनमेंसे एक पद्य, उदाहरणके तौरपर, यहाँ उद्धृत किया जाता है:—

+ यथा:—

तदात्मज उदारधीर्विबुधनीलकंठानुजो, गणेशपदपंकजं हृदि निधाय रामाभिधः। गिरीशानगरे वरे भुजभुजपुत्रैर्मिते ( १५२२ ), शके विनिरमादिर्मं मुहूर्तचिन्तामणिम् ॥ १४-३ ॥

क्षिप्रधुवाहिरभूलमृदुत्रिपूर्वा,  
रौद्रेऽर्कविद्वृषसितेन्दुदिने व्रतं सत् ।  
द्वित्रौषुखरविदिक् प्रमिते तिथौ च,  
कृष्णादिमात्रिलवकेपि न चापराह्णे ॥ १७२ ॥

यह पद्य मुहूर्तचिन्तामणिके पाँचवें संस्कार-प्रकरणका ४० वाँ पद्य है। इससे साफ़ जाहिर है कि यह संहिता ग्रंथ मुहूर्तचिन्तामणिके बादका अर्थात् वि० सं० १६५७से पीछेका बना हुआ है।

यहाँतकके इस संपूर्ण कथनसे यह तो सिद्ध हो गया कि,—यह खंडत्रयात्मक ग्रंथ (भद्रबाहुसंहिता) भद्रबाहु श्रुतकेवलीका बनाया हुआ नहीं है, न उनके किसी शिष्यप्रशिष्यका बनाया हुआ है और न वि० सं० १६५७ से पहलेहीका बना हुआ है; बल्कि उक्त संवत्से पीछेका बना हुआ है। परन्तु कितने पीछेका बना हुआ है और किसने बनाया है, इतना सवाल अभी और बाकी रह गया है।

भद्रबाहुसंहिताकी वह प्रति जो झालरापाटनके मंडारसे निकली है और जिसका ग्रंथ-प्रातिके इतिहासमें ऊपर उल्लेख किया गया है वि० सं० १६६५ का लिखा हुआ है। इससे स्पष्ट है कि, यह ग्रंथ वि० सं० १६६५से पहले बन चुका था और वि० सं० १६५७ से पीछेका बनना उसका ऊपर सिद्ध किया जा चुका है। इस लिए यह ग्रंथ इन दोनों सम्बन्धों (१६५७-१६६५) के मध्यवर्ती किसी समयमें सात आठ वर्षके भीतर—बना है, इस कहनेमें कोई संकोच नहीं होता। यही इस ग्रंथके अवतारका समय है। अब रही यह बात कि, ग्रंथ किसने बनाया, इसके लिए झालरापाटनकी उक्त प्रतिके अन्तमें दी हुई लेखककी इस प्रशस्तिको गौरसे पढ़नेकी जरूरत है:—

“ संवत्सर १६६५ का मृगसिर सुदि १० लिपिकृतं ज्ञानभूषणेन गोपाचलपुस्तकमंडार धर्मभूषणजीकी सुं लिषी। या पुस्तक दे जीनै जिनधर्मका शपथ

हजार है। मुनिपरंपरा सू विमुख है। तीसू न देणी। सूरि भी नहीं देवै। एक वार धर्मभूषण स्वामी दो चार स्थल मांगे दिये सो फेरि पुस्तक नहीं आई। तदि वामदेवजी फेर शुद्धकरि लिषी तयार करी। तीसू नहीं देणी।”

ऊपरकी इस प्रशस्तिसे, जो कि ग्रंथ बननेके अधिक समय बादकी नहीं है, साफ ध्वनित होता है कि यह ग्रंथ गोपाचल ( ग्वालियर ) के भट्टारक धर्मभूषणजीकी कृपाका एक मात्र फल है। वही उस समय इस ग्रंथके सर्व सत्वाधिकारी थे। उन्होंने वामदेव सरीखे अपने किसी कृपापात्र या आत्मीयजनके द्वारा इसे तय्यार कराया है, अथवा उसकी सहायतासे स्वयं तय्यार किया है। तय्यार हो जानेपर जब इस ग्रंथके दो चार अध्याय किसीको पढ़नेके लिए दिये गये और वे किसी कारणसे वापिस नहीं मिलसके तब वामदेवजीको फिरसे दुबारा उनके लिए परिश्रम करना पड़ा। जिसके लिए प्रशस्तिका यह वाक्य 'तदि वामदेवजी फेर शुद्ध करि लिषी तयार करी—' खास तौरसे ध्यान दिये जानेके योग्य है और इस बातको सूचित करता है कि उक्त अध्यायोंको पहले भी वामदेवने ही तय्यार किया था। मालूम होता है कि लेखक ज्ञानभूषणजी धर्मभूषण भट्टारकके परिचित व्यक्तियोंमें थे और आश्चर्य नहीं कि वे उनके शिष्योंमें भी हों। उनके द्वारा खास तौरसे यह प्रति लिखाई गई है। उन्होंने प्रशस्तिमें अपने स्वामी धर्मभूषणकी ग्रंथ न देने संबंधी आज्ञाका—जो संभवतः उक्त अध्यायोंके वापिस न आने पर दी गई होगी—उल्लेख करते हुए भोलेपनसे उसके कारणका भी उल्लेख कर दिया है, जिसकी वजहसे ग्रंथकर्ताके विषयमें उपर्युक्त विचारोंको स्थिर करनेका अवसर मिला है और इस लिए पाठकोंको उनके इस भोलेपनका आभारी होना चाहिए। ता० २९-९-१६।

## पुस्तक-परिचय ।

### १ सूक्तिमुक्तावली ।

सोमप्रभाचार्यका यह प्रसिद्ध ग्रन्थ कई जगह छप चुका है। इस संस्करणमें एक विशेषता यह है कि साथ ही एक सरल संस्कृत टीका लगा दी गई है जो विद्यार्थियोंके लिए विशेष उपयोगी है। टीकाकारने अपना नाम नहीं दिया है; पर जान पड़ता है कि वे दिगम्बर सम्प्रदायके अनुयायी अवश्य हैं। संस्कृतटीकाके नीचे मराठी अर्थ दिया है जिसके लेखक माणगाँव ( कागल ) के कालचन्द्र जिनदत्त उपाध्याय हैं। आपने भूमिकामें लिखा है कि 'अभी तक इसकी संस्कृतटीका कहीं नहीं छपी थी; परन्तु हमारे पुस्तकालयमें भावनगरकी किसी जैन-सभाके द्वारा लगभग ३०-३५ वर्ष पहले छपाई हुई श्रीचन्द्रकीर्तिविनेय हर्षकीर्तिसूक्तित संस्कृत-टीका मौजूद है। इसके ऊपरका एक पृष्ठ नष्ट हो गया है। आश्चर्य नहीं जो कहीं अन्यत्रसे भी इसकी और और टीका ये प्रकाशित हुई हों। पुस्तककी छपाई अच्छी है; पर प्रारंभमें ही ६ पेजका शुद्धिपत्र देखकर दुःख होता है। प्रकाशकोंके द्वारा संशोधनमें इस प्रकारका प्रमाद होना बहुत खटकता है। पुस्तकका मूल्य आठ आने है। मिलनेका पता—“ बी. ए. संकेश्वरे, श्रीवर्द्धमानप्रेस, गुरुवार पेठ, निपाणी ( बेलगाँव ) । ”

### २ वर्णव्यवस्थापर विचार ।

लेखक पं० शिवकुमार शास्त्री । प्रकाशक, विश्वविद्याप्रचारक मण्डल, चन्द्रासी- यू. पी. । मूल्य एक आना । इस ४० पृष्ठकी छोटीसी पुस्तकमें यह बतलाया है कि वर्णव्यवस्था न जन्मसे मानना अच्छा है और न आर्यसमाजके समान कर्मसे। इसे सर्वथा ही उड़ा देना

चाहिए । इसके उड़ाये बिना देशकी उन्नति नहीं हो सकती । यह अस्वाभाविक है । जो इसके भक्त हैं उनके यहाँ भी यह पाली नहीं जाती है । प्रकृति भी अब इसे रहने नहीं देना चाहती । इत्यादि । यह विषय जितने महत्त्वका है, उतनी गंभीरतासे लेखक महाशयने इस पर विचार नहीं किया । हमारी समझमें यह इस तरह जोशमें आकर उड़ा देनेकी चीज नहीं है, इस पर सब ओरोंसे विचार होना चाहिए ।

### ३ समाधितंत्र ।

समाधितंत्र आचार्य पूज्यपादका बनाया हुआ प्रसिद्ध ग्रन्थ है । इसकी एक मराठी और एक हिन्दी टीकाकी समालोचना जैनहितैषीमें हो चुकी है । अब उसीकी यह एक गुजराती टीका भी प्रकाशित हुई है । इसे डाक्टर भूखणदास परभूदासने पर्वत धर्माधीका पुरानी भाषाटीकाके आधारसे लिखा है और शा कश्त्रचन्द धर्मचन्दजीकी सहायतासे प्रकाशित करके विनामूल्य वितरण किया है । इसके गुजराती अनुवादको पढ़नेका तो हमें समय नहीं मिला, इससे हम उसके विषयमें तो कुछ राय नहीं दे सकते हैं; परन्तु ग्रन्थके मूल श्लोक इतने अशुद्ध पदच्छेदादिका खयाल रखते बिना छपे हैं कि जितने आजतक शायद ही किसी जैनग्रन्थमें छपे हों । श्लोकोंकी संख्यातक नहीं दी गई है और और ग्रन्थान्तरोंके तथा मूलके श्लोकोंमें कोई भी भेद नहीं रक्खा गया है । ऐसे महत्त्वके ग्रन्थोंका इस प्रकार असावधानीसे प्रकाशित होना बड़े ही खेदका विषय है । हम प्रकाशक महाशयकी, इस ग्रन्थको विनामूल्य प्रकाशित करनेके कारण जितनी प्रशंसा करेंगे, उससे कहीं अधिक उनकी इस कारण निन्दा करेंगे कि उन्होंने ग्रन्थको सावधानीके साथ प्रकाशित नहीं किया । यह १७५ पृष्ठकी पुस्तक प्रकाशकके पास नवापुरा सूरतसे ( शायद पोस्टेज भेजनेपर ) मिल सकेगी ।

### ४ गद्यचिन्तामणि ।

तंजौर-ट्रेनिंगस्कूलके अध्यापक श्रीयुत टी. एस. कुप्पुस्वामी शास्त्री जैनसाहित्यके बड़े ही प्रेमी हैं । आपकी आर्थिक अवस्था अच्छी नहीं है, तो भी आपने कई अलभ्य जैन ग्रन्थोंको छपाकर प्रकाशित किया है । महाकवि वादी-भासिंहका यह अपूर्व काव्य भी आपकी ही कृपासे जैनसमाजके दृष्टिगोचर हुआ था । पाठक यह जानकर प्रसन्न होंगे कि उक्त काव्यका अब यह दूसरा संस्करण प्रकाशित हुआ है । यह संस्करण पहले संस्करणकी अपेक्षा अधिक शुद्ध और सुन्दर है । कपड़ेकी बढ़िया जिल्द बँधी हुई है । मूल्य वही दो रुपया है । आशा है कि हमारे संस्कृतज्ञ पाठक इस संस्करणकी एक एक प्रति मँगाकर शास्त्रीजीके उत्साहको बढ़ायेंगे । शास्त्रीजी हिन्दी नहीं जानते, इस कारण उन्हें आर्डरका पत्र अँगरेजी या संस्कृतमें लिखना चाहिए ।

### ५ प्रभंजनचरित ।

लेखक, पं० घनश्यामदासजैन न्यायतीर्थ और प्रकाशक, जैनग्रन्थकार्यालय, ललितपुर ( झांसी ) । पृष्ठसंख्या ४२ । मूल्य चार आने । ' यशोधरचरित ' नामक किसी संस्कृतग्रन्थकी पीठिकामें प्रभंजनमुनिका चरित वर्णित है । पाण्डितजीने उसीका यह हिन्दी रूपान्तर लिखा है; परन्तु यह बतलानेकी कृपा नहीं की कि उक्त ' यशोधरचरित ' किसका बनाया हुआ है और कहाँ पर है, जिसकी पीठिका या उत्थानिकामें यह चरित वर्णित है । उपलब्ध यशोधरचरितोंमें तो ऐसा कोई नहीं है जिसमें इस प्रकारकी विस्तृत उत्थानिका हो । यदि परिश्रम किया जाय तो संभव है कि मूलग्रन्थपरसे ग्रन्थकर्ताका पता चल जाय । ग्रन्थके प्रारंभमें प्रतिज्ञा की गई है कि ' प्रभंजनगुरोश्चरितं वक्ष्ये ' अर्थात् प्रभंजन गुरुका चरित कहता हूँ । इसपर-

से पण्डितजी अनुमान करते हैं कि यशोधर-चरित प्रभंजन मुनिके किसी शिष्यका बनाया हुआ है। परन्तु यह अनुमान ठीक नहीं। साक्षात् शिष्य ही किसीको 'गुरु' कह सकता हो, ऐसा नहीं है। गुरुका अर्थ साधारण जैनमुनि भी हो सकता है। प्रभंजन मुनिका चरित राजा पूर्णभद्रके पूछने पर श्रीवर्धन मुनिने कहा है और इसके बीचमें उन्होंने अपने और अपने साथी अन्य सात मुनियोंके वैराग्यका कारण भी पृथक् पृथक् बतलाया है। सात मुनियोंकी दीक्षाका कारण बतलाकर चौथे सर्गके अन्तमें उन्होंने कहा है कि आठवें नन्दमुनिके तपका हेतु यशोधर महाराजका चरित है ( जो आगे कहा जायगा )। इससे मालूम होता है कि प्रभंजन, नन्दिवर्धन, नन्द और यशोधर महाराज आदि सब समकालीन हैं, और इस लिए यशोधरचरितके रचयिताके लिए जिस प्रकार यशोधरमहाराज एक बहुत पुराने समयके पुराण-पुरुष हैं उसी प्रकार प्रभंजन मुनि भी हैं। वे उनके गुरु या दादागुरु आदि कोई नहीं हो सकते। पण्डितजी चाहते, तो उन्हें यह बात थोड़े ही परिश्रमसे मालूम हो सकती थी। प्रभंजनमुनिका चरित्र स्त्रीचरित्रसे-स्त्रियोंके छल कपटोंसे-भरा हुआ है। प्रभंजन मुनि और उनके साथी दूसरे आठ मुनि सभी स्त्रियोंके पापकर्मोंको देखकर विरागी हुए हैं। मालूम नहीं उस समय केवल स्त्रियोंका ही चरित्र इतना गिरा हुआ था, या पुरुषोंमें भी यही बात थी। कथायें यद्यपि बहुत ही छोटी छोटी हैं, तो भी वे शुकबहत्तरीकी कथाओंके समान खूब ही कुतूहलवर्धक और मनोरंजक हैं। उनके पढ़नेमें जी लगता है। हमारे कथाग्रन्थोंमें इस श्रेणीकी कथायें बहुत ही कम हैं। अच्छा होता, यदि पण्डितजी इसके साथ

मूलग्रन्थको भी प्रकाशित कर देते। अनुवादकी भाषा अच्छी है और वह अन्य पण्डितोंकी रचनाके समान क्लिष्ट नहीं है। इसके लिए हम पण्डितजीका अभिनन्दन करते हैं।

### ६ रस-क्रिया ।

सम्पादक, वैद्यरत्न पं० शिववक्स शर्मा गुरु, फतहपुर ( सीकर ) और प्रकाशक, बाबू जमनादास पोद्दार, लाल कटरा, दिल्ली। मूल्य चार आने। 'यंत्र निर्माणका प्रामाणिक सचित्र निबन्ध।' धातुओंके मारने या रस बनानेमें जिन यंत्रोंका उपयोग होता है, उनका स्वरूप इस संस्कृत पद्यानिबन्धमें बतलाया गया है। सम्पादक महाशयने अपने पुस्तकालयके अनेक प्राचीन ग्रन्थोंसे उद्धृत करके इसे लिखा है। इस विषयके ग्रन्थ बहुत ही दुर्लभ हैं। अच्छा होता यदि पण्डितजी इसका हिन्दी अनुवाद भी साथ ही साथ प्रकाशित कर देते। यंत्रोंके जो चित्र पीछेके पृष्ठोंमें दिये गये हैं, वे बहुत ही भद्दे और अस्पष्ट हैं। यदि किसी चित्रकारको समझाकर उससे ये चित्र बनवाये जाते, तो पाठकोंको बहुत लाभ होता। वे यंत्रोंके स्वरूपको अच्छी तरह समझ लेते।

### प्राप्तिस्वीकार ।

नमक सुलेमानी—'श्रियुत भाई गोरेलाल पन्नालाल जैन, चन्दाबाड़ी गिरगाँव, बम्बई' से हमें एक शीशी नमक सुलेमानी मिला है। हमने कुछ दिनोंतक इसका उपयोग किया। यथेष्ट स्वादिष्ट न होनेपर भी यह बहुत गुणकारी है। साते ही अजीर्ण पच जाता है। दस्त साफ आता है। एक अच्छे अनुभवी वैद्यके बतलाये हुए नुसखेके अनुसार यह बनाया गया है। छह तोलेकी एक शीशीका मूल्य आठ आने है।

## शरदागम ।

( ले०-श्रीयुत पं० रामचरित उपाध्याय । )

( १ )

अति दुखदाई नीति दुर्जनोंकी होती है,  
पर सुखदाई वही सज्जनोंकी होती है ।  
मेघोंका उत्पात सदा जग स्मरण करेगा,  
पर आया अब शरत्काल दुख हरण करेगा ॥

( २ )

धन पाकरके नीच अन्याको दुख देते हैं,  
वे ही हो धन-हीन सभोंको सुख देते हैं ।  
क्या करते थे मेघ वारिसे पूर्ण रहे जब,  
शान्त सुखद अति विशद हुए हैं वे कैसे अब ॥

( ३ )

धुली हुई सी मही हुई है, जल निर्मल है,  
धूलि-कणोंसे हीन व्योम कैसा उज्ज्वल है ।  
अन्यार्थोंके बाद भूप यदि न्यायी आवे,  
क्यों न देशकी दशा तुरंत ही पलटा खावे ॥

( ४ )

काश कमल केबड़े अभित फूले हैं कैसे,  
ये मेघोंकी मृत्यु तुरत भूले हैं कैसे ।  
या उत्पीड़क-पतन दुखद क्यों होगा जगमें ॥  
कष्टक कैसे कभी रुचेगा अपने मगमें,

( ५ )

आबसते हैं सुभग राज्यमें जैसे सज्जन,  
हंस और आबसे यहाँ वैसे ही खज्जन ।  
पर क्रमशः खद्योत दूर होते जाते हैं,  
दुष्ट कभी क्या भली जगह रहने पाते हैं ॥

( ६ )

इन्द्र-धनुष अब नहीं दृष्टि-गोचर होता है,  
परदेशीका राग अधिक आस्थिर होता है ।  
पर नभमें शुक्र-पंक्ति छटा क्या दिखा रही है,  
मनो ऐक्यकी प्रथा हमें यह सिखा रही है ॥

( ७ )

उद्धतपनको छोड़ सूखती हैं सरितायें,  
पातिव्रत ज्यों पाल रही हों पतिव्रतायें ।  
उनके दोनों कूल रहित हो गये पंकसे,  
ज्यों सतियोंके चरित हीन हों दुष्कलंकसे ॥

( ८ )

चातक दादुर मोर मौन हो छिपे कहीं हैं,  
कोयल भी निज कूक सुनाती कभी नहीं है ।  
धूर्तोंकी धूर्तता सदा क्या चल सकती है,  
या विधिकी लिपि कभी किसी विधि टल सकती है ॥

( ९ )

जब अज्ञान-तमिस्र मनुजका खो जाता है,  
निजहितमें तब दत्तचित्त वह हो जाता है ।  
मेघाडम्बर दूर हुआ है बाधक जबसे,  
निज उन्नतिमें लगा हुआ है यह जग तबसे ॥

( १० )

नृप उदारकी प्रजा स्वत्व पाती है जैसे,  
सुख जीवनका और तत्त्व पाती है जैसे ।  
उसी भाँति व्यापार-लभ संसार हुआ है,  
शरदागमसे सत्य बड़ा उपकार हुआ है ॥

( ११ )

सुख-साधनके लिए यही उत्तम अवसर है,  
शीत-भीति है नहीं, नहीं आतपका डर है ।  
सब होकरके एक, देशके प्राण बचाओ,  
दुख दानवको शीघ्र देशसे दूर भगाओ ॥

## राजनीतिके मैदानमें आओ !

( ले०—श्रीयुत ब्र. भगवानदीनजी । )

जिनकी प्रतिमायें हमारे मन्दिरोंमें विराजमान हैं वे सब ऐसे पुरुष थे जिन्होंने अपनी घोर तपस्या द्वारा निर्वाणपद प्राप्त किया था । वे सब क्षत्रियकुलमें उत्पन्न हुए थे और उनमेंसे अधिकांशने बड़े बड़े राज्योंका संचालन किया था । भगवान् ऋषभदेवजीने प्रजाके हितके लिए अगणित काम बतलाये थे जो अब तक जारी हैं । यदि यह कहा जाय कि उन्होंने प्रजाको सभ्यता सिखलाई थी, तो कुछ अत्युक्ति न होगी । हमारे अन्तिम तीर्थंकर महावीर जब हमसे बिदा हुए, तब भी हमारी अवस्था खासी थी और हमारे रीति-रिवाज बहुत सीधीसादे क्षत्रियोंके जैसे ही थे । हमारे सारे पुराणपुरुष भी क्षत्रिय वंशके थे, ऐसा उल्लेख मिलता है । कुछ उपपुराणोंमें क्षत्रिय और वैश्य दोनोंका कथन पाया जाता है—अर्थात् उनमें वैश्य भी जैनधर्मके धारक बतलाये गये हैं, परन्तु इस समय तो जितने जैनधर्मावलम्बी हैं वे प्रायः सब ही वैश्य हैं । अक्सर लोग पूछ बैठते हैं कि “ बनियाँ ( वैश्य ), क्या यह कोई बुरी बात है ? ” पर हम पूँछते हैं कि “ तो क्या यह कोई अच्छी बात है ? ” आप कितने ही अच्छे पहलवान्

बनकर पलटनमें दाखिल होने जाइए; परन्तु यह जानकर कि आप बनियें हैं तुरन्त निकाल बाहर कर दिये जायेंगे ! यह बात हमारी समझमें नहीं आती कि सारे ही क्षत्रिय हमारा—जैनधर्मका—साथ छोड़कर चले गये हों और बीचमें मिले हुए बनियें ही बनियें हम सब रह गये हों । क्योंकि इस प्रकारका कोई प्रमाण या उदाहरण नहीं मिलता । इस सम्बन्धमें हमको एक बात याद आती है—। जब कुँवर दिग्विजय-सिंहजी आश्रमके भ्रमणमें हमारे साथ थे तब अनेक स्थानोंमें वहाँके जैनी भाई अन्य लोगोंको उनका परिचय देते हुए कहते थे—“ पहले आप क्षत्रिय थे; परन्तु अब जैन हो गये हैं । ” अभिप्राय यह कि साधारण लोगोंकी अब यह धारणा ही नहीं रही है कि जैनोंमें वैश्योंके अतिरिक्त और कोई—क्षत्रिय आदि—भी गिने जा सकते हैं । जैन कहनेसे अब केवल वैश्योंका बोध होता है ।

इस विषयमें जब हम विचार करते हैं तब यह निश्चित होता है कि पार्श्वनाथ-स्वामीके पश्चात् जब जैनधर्म बिल्कुल लुप्त हो गया, तब महावीरस्वामीका जन्म हुआ । इस समय हिंसाका प्रचार बहुत बढ़ चुका था । इसके रोकनेके महत्कार्यके लिए एक



बड़ी भारी शक्तिकी अवश्यकता थी, इस लिए उस समय जो कोई महावीर जिनके झण्डे तले आया, वह जैन (श्रावक) नामसे पुकारा गया। इस महत्कार्यमें क्षत्रियोंको छोड़कर और शामिल ही कौन हो सकता था? और यदि कोई हुआ भी होगा, तो उस समय उद्देश्य एक होनेसे सबका रहन-सहन एक ही ढंगका होता होगा, ऐसा जान पड़ता है। उस समय जाति-पाँतिका खयाल करना उद्देश्यसिद्धिमें सब प्रकार हानिकर होता, इससे सारे जैनधर्मावलम्बी एक ही होंगे। इन विचारोंको प्रकट करके हम ऋषभदेवजी द्वारा स्थापित वर्णाश्रमका विरोध नहीं करते हैं; परन्तु यह बतलाना चाहते हैं कि लुप्त धर्मोंमें जान इसी तरह पड़ा करती है। जिस प्रकार आज कुँवर दिग्विजय-सिंहजी यह पूछे जानेपर कि कौन हैं, जैन बतलाये जाते हैं और चाहिए था राजपूत बतलाना, ठीक इसी प्रकार उस समय जैन-धर्मावलम्बी किसी भी वर्णके होनेपर भी जैन या श्रावक बतलाये जाते थे। अस्तु। अहिंसा प्रचारका काम खूब जोरशोरसे चला। पर यह कार्य यों ही नहीं चल गया था। बड़े बड़े आचार्योंने बड़े परिश्रमसे लोगोंको राजनीति सिखाई और ऐसे ऐसे शिष्य तैयार किये जिन्होंने सैकड़ों राजाओंको इस धर्ममें शामिल किया और इस प्रकार उनके द्वारा हिंसाको रोका। हिंसाका जो लक्षण शास्त्रमें दिया है उससे मालूम होता है कि वे केवल बकरों,

बैलों या पक्षियोंको ही मारनेसे नहीं बचाते थे, या उनपर ज्यादा बोझ न लदने देकर या व्यर्थ भार पड़ने न देकर ही चुप न रह जाते थे; किन्तु उनका सबसे अधिक लक्ष्य मनुष्योंकी ओर था। उनका यही काम था कि वे किसी व्यक्तिको किसी प्रकार दुःख न पहुँचने दें। वे प्रजाके स्वत्वोंकी रक्षा करते थे, उनके ऊपर किये जानेवाले अत्याचारोंको रोकते थे और राजाके लिए ऐसी नीति तैयार करते थे जिससे किसी प्रकारकी बाधा राष्ट्रको न हो। इस प्रकारके धर्मग्रन्थोंकी रचना करते थे जिनके अनुसार चलनेसे उनकी सारी जरूरतें मिट जाती थीं। यह बात ऐसी नहीं है कि योंही आसमानसे गिर पड़ी हो; परन्तु राजनीतिके अच्छे अच्छे ग्रन्थ अब भी उपलब्ध हैं\*। हमारे घरके साहित्यकी टटोल ही कब की गई? आज कल तो जैनधर्मावलम्बी पण्डितोंका विषय केवल न्याय ही रह गया है, इस लिए और ग्रन्थ आँखके सामने होते हुए भी नजर नहीं आते। अस्तु। जब महावीर भगवान् द्वारा चेताये हुए समाजने बहुत समय तक स्वार्थत्याग करके अनेक राजाओंको जैन बना दिया और उनके द्वारा यह कार्य अच्छी तरह चलने लगा, तब समाजके लोग यह लोकहितका कार्य छोड़कर व्यापारमें लग गये और तब-हीसे हम बनियें कहलाने लगे। हमारी रग-रगमें राजनीति भरी थी और क्षत्रियत्वका

\* जैसे श्रीसोमदेवसूरिकृत नीतिवाक्यामृत।

जोश ज्योंका त्यों कायम था, इसलिए हमने बनियें बननेमें भी अपने महत्त्वको नहीं खोया—गुलामकी फन्दोंसे हम अभीतक बहुत कुछ बचे हुए हैं। परन्तु बिना पानीके पौधा कितने दिन हरा—भरा रह सकता है ? उस वृक्षके कुछ पत्ते पीले होकर गिर चुके हैं और कुछ समयकी धीगाधीगीके कारण तोड़ लिये जाकर विदेशी बाजारमें राष्ट्र—हानिकर चाटकी बिक्रीके काममें लाये जाने लगे हैं। बहुतसे ऐसे हैं जो शिक्षारूपी रस न मिलनेके कारण वृक्षपर ही मुरझा-मुरझा कर रह गये हैं और बहुतोंका शरीर रीति—रिवाजोंके कीड़ोंके आक्रमणसे छिन्नभिन्न हो चुका है। एक बात और भी है। हम और जातियोंकी अपेक्षा मजबूत ऐक्यसूत्रमें बँधे हुए हैं। लोग हमारे अन्दर अनेकपना देखते हैं सही, परन्तु वे ऐसी ही भूलमें हैं जैसे कोई वट-वृक्षकी अनेक पीढ़ें देखकर उसको अनेक वृक्ष समझ बैठे। हम कितने ही जुदे दिखलाई दें; परन्तु हम सबमें रस उसी एक ही महा-वीरवृक्षसे प्रवाहित होता है।

आजकल स्वराज्यका आन्दोलन बड़े जोर-शोरसे हो रहा है। देशकी तमाम जातियाँ इस बातको समझने लगी हैं कि बिना स्वराज्य मिले भारतवर्षका वास्तविक कल्याण नहीं हो सकता है। प्यारे जैनी भाइयो ! इस आन्दो-

लनमें तुम्हारे शामिल हुए बिना पशु और पक्षियोंको कोई अधिकार न मिल सकेगा। अब तुम्हारे चुप रहनेका समय नहीं है। राजनीतिके मैदानमें आओ। लोग तुम्हारी बाट जोह रहे हैं। तुम्हारा यह मौखसी—परम्परागत काम है। तुम्हारे ही हाथ लगा-नेसे यह छप्पर उठेगा और प्राणीमात्रका दुःख दूर होगा। तुम्हारे बिना और किसका ऐसा हृदय है जो इस भारी कामको कर सके ? यह काम जोशका नहीं; किन्तु जोशके डाट-नेका है। यह काम नामकी इच्छासे नहीं हो सकता; इसमें नामकी इच्छाका त्याग करना पड़ेगा। इसमें बड़े भारी स्वार्थत्यागकी आवश्यकता है—बड़े विशाल हृदयोंकी आवश्यकता है और इन गुणों पर तुम्हारा सबसे अधिक स्वत्व है। उठो और इस नावको शीघ्र ही पार लगा दो; तुम्हारे लिए यह बाँये हाथका खेल है। और लोग इस कामको शारीरिक शक्तिसे किया चाहते हैं और इसके लिए अपने कषायभावोंको हथियार बनाना चाहते हैं; परन्तु वास्तवमें इसकी सिद्धि क्षमासे ही हो सकती है। यह काम मनोबलका है, वीतरागताका है, हितैषिताका है और ऐसे ही सर्वोच्च लक्ष्यके आप उपासक हैं। फिर क्यों बिलम्ब कर रहे हो और तृषातुर भूमिको तरसा रहे हो ?

## जैनधर्मके पालनेवाले वैश्य ही क्यों ?

पिछले पृष्ठोंमें श्रीयुत ब्र० भगवान-दीनजीका 'राजनीतिके मैदानमें आओ' शीर्षक लेख प्रकाशित किया गया है। इस लेखमें एक स्थल पर यह प्रश्न उठाया गया है कि पहले जैनधर्मके धारण करनेवाले क्षत्रिय ही अधिक थे, तब वे पीछे वैश्य कैसे हो गये ? और इसका समाधान यह किया गया है कि जब वे लोग अपना लोकहितका कार्य समाप्त कर चुके, तब व्यापारमें लग गये और बनियें या वैश्य कहलाने लगे। परन्तु हमारी समझमें यह उत्तर सन्तोषप्रद नहीं। यह प्रश्न बहुत ही महत्त्वका है, जैनधर्मके उत्थान और पतनके इतिहाससे इसका गहरा सम्बन्ध है, इसलिए इस पर खूब गंभीरतासे विचार किया जाना चाहिए।

१ जैनधर्मके धारण करनेवाले या उसको प्रचारमें लानेवाले केवल क्षत्रिय ही नहीं थे। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र यहाँतक कि अनार्य भी जैनधर्मके उपासक थे। कथाग्रन्थोंसे मालूम होता है कि सब ही प्रकारके लोग जैनधर्मका पालन करते थे। एक चाण्डालकी कथा बहुत ही प्रसिद्ध है जिसने जैनधर्म धारण किया था। गरज यह कि जैन एक प्रकारका धर्मविशेष है, समाज या जाति नहीं। उसे सारे जगतके मनुष्य धारण

कर सकते हैं चाहे वे किसी भी जाति या देशके हों। ऐसी दशामें यह संभव नहीं कि किसी समयमें, भगवान् महावीरके समयमें या और कभी, केवल क्षत्रिय ही इसके अनुयायी हों। यह दूसरी बात है कि पुराण पुरुष तीर्थकर चक्रवर्ती नारायण आदि सब क्षत्रिय ही हुए हैं; परन्तु इससे यह सूचित नहीं होता है कि ब्राह्मण वैश्य आदि जैनधर्मके उपासक नहीं थे। स्वयं महावीरस्वामीके गणधर इन्द्रभूति आदि जो भगवानके मार्गके खास प्रवर्तक थे ब्राह्मण थे। यह अवश्य स्वीकार करना पड़ेगा कि जिन (कर्मशत्रून् जयतीति जिनः), विजयी, या कर्मोंको जीतनेवाले उन्हीं लोगोंमें हो सकते हैं जिनकी परिस्थितियाँ साहस, वीरता, उदारता आदि गुणोंके विकास होनेके अधिक अनुकूल होती हैं। उस समय क्षत्रिय जैसे जयशील समाजमें ही यह योग्यता थी कि वह तीर्थकरोंको—अरहंतोंको जन्म दे सके। भारतके अन्यान्य महापुरुष भी—राम, कृष्ण, बुद्ध आदि भी—क्षत्रियोंके ही वंशमें हुए हैं।

२ क्षत्रिय जब अपना काम कर चुके—अहिंसाधर्मका यथेष्ट प्रचार कर चुके, तब वे इस कार्यको छोड़कर वैश्य बन गये, यह कहना कोई युक्ति नहीं रखता। वे वैश्य ही क्यों बन गये? क्षत्रिय ही क्यों न बने रहे ?

अहिंसाप्रचारका काम बन्द करने पर जिस तरह वे वैश्य बननेके लिए स्वतंत्र थे उसी प्रकार क्षत्रिय बननेके लिए भी तो थे। वैश्यत्वमें उनके लिए ऐसा कोई खास प्रलोभन भी न था जो वे उसे ही स्वीकार करते। यह भी कैसे मान लिया जाय कि वे अपना काम पूरा कर चुके थे या जैनराजाओंके द्वारा अहिंसाका प्रचार धड़ाधड़ होने लगा था ? यह काम इतना बड़ा था कि यदि महावीर स्वामीके समयसे लगातार आजतक वैसी ही तेजीसे चलाया जाता तो भी समाप्त न होता। जिस समय जैनधर्म उन्नतिके शिखरपर पहुँचा हुआ था, उस समय भी भारतवर्षका आधेसे अधिक भाग हिंसाप्रेमी—मांसभक्षी था और विदेशोंमें तो प्रायः सर्वत्र ही निरपराधी पशुओं और दूसरे जवोंपर छुरी चलाई जाती थी। इन सबको अहिंसाप्रेमी बनानेका काम क्या साधारण था ?

३ इस समय यद्यपि जैनधर्मावलम्बियोंमें अधिक संख्या वैश्यवृत्तिवालोंकी ही है; परन्तु ब्राह्मण, क्षत्रिय, और शूद्र वर्णवालोंका सर्वथा अभाव नहीं हो गया है। दक्षिण और कर्नाटकमें जैनब्राह्मणोंके बहुतसे घर हैं, जो उपाध्याय कहलाते हैं। वहाँ ऐसे भी कोई सौ घर हैं, जो अपनेको क्षत्रिय बतलाते हैं। राजपूतानेके ओसवालोंके सैकड़ों खान्दान अब भी हथियार बाँधते हैं और यदि उनसे कोई वैश्य कहे तो वे अपनी अप्रतिष्ठा समझते हैं। वहाँके खण्डे-

लवाल भी अपनेको राजवंशीय समझते हैं। जैनहितैषीके पिछले अंकोंमें मंडारियों वच्छावतों और दूसरे राजपूतानेके जैनोंका जो इतिहास प्रकाशित हुआ है उससे मालूम होता है कि वहाँ अभी अभी तक क्षात्रधर्मकी पालना करनेवाले जैनोंकी खासी संख्या थी। दक्षिणमें एक 'कासार' नामकी जाति है जो काँसे पीतलके वर्तन बनाने और बेचनेका काम करती है। इस जातिके सैकड़ों घर जैन हैं, जो शिल्पवृत्तिके कारण शूद्र कहे जा सकते हैं। बरारमें भी कुछ शूद्रजातियाँ जैनधर्मको पालनेवाली हैं।

४ अब देखना यह है कि यह धर्म—जिसमें क्षत्रियोंकी प्रधानता थी—मुख्यतः वैश्योंका ही धर्म क्यों बन गया ? तेरह लाख जैनोंमें साढ़े बारहलाखसे भी अधिक संख्या वैश्योंकी ही क्यों हो गई ? जैसा कि हमने गताङ्कमें लिखा था संसारके अन्य पदार्थोंके समान धर्मोंमें भी परिवर्तन हुआ करते हैं। समयकी आवश्यकताओं और परिस्थितियोंके अनुसार उनमें भी धीरे धीरे अलक्ष्यभावसे थोड़ा थोड़ा परिवर्तन हुआ ही करता है। संसारमें ऐसा कोई भी धर्म नहीं है जो अपने ठीक उसी रूपको बनाये हुए हो—जिसमें कि वह अपने स्थापित होनेके समय था। अपनी इस परिवर्तनशीलताके कारण वे अनेक भेदों और उपभेदोंमें विभक्त भी हुआ करते हैं। ज्यों ही कोई नये परिवर्तनकी या नये सिद्धान्तके ग्रहणकी आवश्यकता होती

है और कोई शक्तिशाली विद्वान् या आचार्य उसकी पूर्तिका प्रयत्न करता है त्यों ही उसके विरोधी खड़े हो जाते हैं—विवाद खड़ा हो जाता है और अन्तमें दो भेद हो जाते हैं। आगे उनके चार, छह, आठ आदि विभाग होने लगते हैं। आज दुनियाका शायद ही कोई धर्म ऐसा हो, जिसकी दो चार शाखायें या सम्प्रदाय न हों। हमारा विश्वास है कि इस विषयमें जैनधर्म भी अपवादरूप नहीं है। उसमें भी समय समय पर अनेक परिवर्तन हुए हैं और वह भी अनेक भेद उपभेदोंमें बँटता रहा है। हम यह नहीं कहते हैं कि इन परिवर्तनोंके कारण जैनधर्म सर्वथा ही बदल गया है, अथवा उसके असलीरूपको हम देख ही नहीं सकते हैं; परन्तु यह अवश्य कहना पड़ेगा कि साधारण आँखोंसे उसके दर्शन नहीं हो सकते। उसके मूलरूपकी तो बहुत कुछ रक्षा हुई है, परन्तु उसका बाह्यरूप—उसका ऊपरी आवरण—बहुत ही बदल गया है। एक अहिंसाको ही ले लीजिए। इसका एकरूप तो उस समय प्रचलित था, जब जैनधर्मके पालनेवाले बड़े बड़े युद्ध करके खूनकी नदियाँ बहाते थे और एक स्वरूप अब प्रचलित है, जिसके कारण साधुओंकी तो बात ही जुदी है, साधारण नीचेसे नीचे दर्जेका श्रावक भी हिंसाके डरसे रातको चिराग नहीं जलाता है और दन्तधावनके बिना मुँहको दुर्गन्धका घर बनाये रहता है ! हिंसाके स्वरूपमें या

लक्षणमें अन्तर नहीं पड़ा है, पर उसका उपयोग किसे और किस प्रकार करना चाहिए, इसमें अन्तर पड़ गया है। हमारा खयाल है कि इसी प्रकारके अन्तर पड़ते रहनेसे जैनधर्ममें आजसे दो हजार वर्ष पहले जो जीवनप्रद तत्त्व थे, जिनसे मनुष्य कर्मवीर, कार्यक्षम और सच्चा महात्मा बन सकता था, वे धीरे धीरे कम होते गये और इसका परिणाम यह हुआ कि जैनधर्मको पालते हुए अपने क्षात्रधर्मका निर्वाह करना, या उसके तेजको बनाये रखना क्षत्रियोंके लिए कठिन हो गया। उनकी वृत्ति धीरे धीरे बदलती गई और उसने भीरु दुर्बल सहनशील वैश्य-वृत्तिमें जाकर विश्राम लिया। क्षत्रियोंमें और वैश्योंमें जितना अन्तर है, हमारी समझमें उतना ही अन्तर पूर्वकालके और वर्तमानकालके जैनधर्ममें है। पं० सदासुखजीकृत रत्नकरण्डश्रावकाचारको पढ़कर क्षत्रिय वैश्य बन जायगा और वैश्य उदासीन, निराशावादी, कर्तव्यशून्य 'धर्मात्मा' बन जायगा। क्यों ? इस लिए कि उसकी उपदेशप्रणाली ही ऐसी है। तत्त्व उसमें जैनधर्मके ही बतलाये गये हैं, पर यह खयाल नहीं रक्खा गया है कि गृहस्थोंका संसारको त्याज्य समझने, फूँकफूँककर पैर रखने और शुद्ध धर्मात्मा बन जानेके सिवाय और भी कुछ कर्तव्य है। जैनधर्मके प्राचीन साहित्यमें और पिछले साहित्यमें यही अन्तर है। आप जितना जितना पिछला साहित्य देखेंगे, उसमें वैश्य-

वृत्तिको गढ़नेवाले और क्षात्रवृत्तिको दबाने-वाले उतने ही अधिक सामान पायेंगे। जैन-धर्ममेंसे क्षत्रियोंके कम करनेवाले या लुप्त करने-वाले इसके सिवाय और भी कारण होंगे, जिनका विचार विशेषज्ञोंके द्वारा होगा; परन्तु हमारी समझमें यह भी एक कारण हो सकता है। संभव है कि यह केवल भ्रम ही हो।

५ ब्राह्मणों और शूद्रोंके अभाव पर भी लगे हाथ विचार हो जाना चाहिए। ब्राह्मणोंकी वृत्ति यजन—याजन और पठन—पाठन आदि बतलाई गई है। पर जैनोंके यहाँ इसकी आवश्यकता नहीं। जैनधर्ममें उपदेश आदिका कार्य मुनि करते हैं। पुराणोंमें जहाँ कहीं किसीकी विद्याशिक्षाका जिक्र आता है, वहाँ यही लिखा रहता है कि अमुक राजपुत्र या राजपुत्रीने मुनि महाराजके पास जाकर विद्याध्ययन किया। पूजन पाठ और स्वाध्याय करनेका श्रावकोंको स्वयं अधिकार है। ये उनके नित्य षट्कर्मोंमेंसे दो प्रधान कर्म हैं। जैनधर्म यह मानता नहीं कि मैं आपके लिए प्रतिदिन पूजा अनुष्ठान या पुस्तकपारायण किया करूँ और उसका फल आपको मिले। चढ़े हुए द्रव्यको लेना या मन्दिरोंको लगी हुई भूमि या जागीरकी आमदनीसे निर्वाह करना जैनधर्ममें मना है। इसे 'निर्माल्य' माना है जिसका खाना महान् पाप है। ऐसी अवस्थामें जैन-ब्राह्मणोंका निर्वाह ही नहीं हो सकता

और निर्वाहके—जीविकाके—अभावमें उनका अस्तित्व ही संभव नहीं। यही कारण है जो दक्षिण और कर्नाटक प्रान्तके थोड़ेसे उपाध्यायोंको छोड़कर सारे भारतवर्षमें जैन-ब्राह्मणोंका अभाव है। दक्षिण और कर्नाटकमें जो थोड़ेसे उपाध्याय हैं उनकी भी अवस्था अच्छी नहीं है। उन्हें निर्माल्य या देवद्रव्यसे ही अपनी जीविका चलानी पड़ती है। आदिपुराणोक्त संस्कारादि कर्म करानेसे जैनब्राह्मण अपना निर्वाह कर सकते हैं, ऐसा कहा जाता है; परन्तु एक तो अभी यह बात ही विवादग्रस्त है कि यह संस्कारपद्धति आदि-पुराणके पहले भी थी या नहीं और दूसरे इन कर्मोंसे इनेगिने लोगोंका ही निर्वाह हो सकता है—लाखोंका नहीं।

६ दक्षिण और कर्नाटकमें जो जैन ब्राह्मण दिखलाई देते हैं, हमारी समझमें वे भगवज्जनसेनाचार्यकृत आदिपुराणकी, उस समयकी परिस्थितिके अनुसार रची हुई, नवीन वर्णाश्रमसृष्टिके फल हैं। वे एक प्रतिभाशाली और अधिकारी आचार्य थे, इसमें सन्देह नहीं; पर यह रचना चिरप्रचलित जैनधर्मकी मूल प्रकृतिके अनुकूल नहीं थी इस कारण यथेष्ट समाहत नहीं हुई और उत्तर भारतमें तो इसका बीज ही नहीं जमा।

७ हम यह नहीं कहते कि ब्राह्मण लोग जैनधर्मके धारक ही नहीं हुए या हमारे आचार्योंने ब्राह्मणोंको जैन नहीं बनाया; नहीं,

लाखों ही ब्राह्मण जैनधर्मके उपासक हुए होंगे; परन्तु जैन होने पर उनकी ब्राह्मणवृत्ति न रही होगी। उन्हें वैश्यवृत्ति ग्रहण करनी पड़ी होगी और वे कुछ समय तक ब्राह्मण कहलाकर वैश्योंमें ही लीन हो गये होंगे। पद्मावतीपुरवारोंमें जो पांडे हैं वे ब्राह्मण बतलाये जाते हैं और कहा जाता है कि वे कहीं दक्षिणकी ओरसे बुलाये गये थे। कुछ समय तक तो उन्होंने किसी तरह दानदक्षिणासे अपना काम चलाया; परन्तु पीछे न चला और उन्हें भी वैश्यवृत्ति ग्रहण करनी पड़ी। लोग जानते हैं कि उनका बेटेव्यवहार पद्मावतीपुरवारोंके साथ अबसे लगभग १०० वर्ष पहले ही शुरू हुआ है।

८ अब शूद्रोंको लीजिए कि इनका अभाव कैसे हो गया। इनके पढ़ाने लिखानेकी या इनकी ज्ञानशक्तिको विकसित करनेकी ओर शायद ही कभी ध्यान दिया गया हो। ये लोग सदा अज्ञानमें ही पड़े रहे। इसलिए आज यदि एक जैन आचार्यने हजार दो हजार शूद्रोंको जैन बनाया, तो कल एक शैवाचार्यने आकर उन्हें शैव बना डाला। दक्षिणमें कासारोंके हजारों घर ऐसे हैं जो पहले जैन थे, उनके बनाये हुए जैनमन्दिर तक मौजूद हैं, पर अब वे शैव हैं। कुछ समय पहले एक थियोसोफिस्टने प्रकाशित किया

था कि मद्रास प्रान्तके एक लाखसे अधिक जैन ईसाई बनाये जा चुके हैं और उनमें अधिकांश शूद्र थे। पिछले कई सौ वर्षोंसे जेनोंमें प्रभावशाली उपदेशकों और साधुओंका अभाव हो रहा है, इस कारण नये जैन तो कोई बनाये नहीं गये और पुरानोंको दूसरे धर्मवालोंने मूँड़ लिया। हमारी समझमें तो अभी यही एक कारण आता है जिससे जैनधर्मके माननेवालोंने शूद्रोंका प्रायः अभाव हो रहा है। यह भी जान पड़ता है कि बहुतसे शूद्र जैन धीरे धीरे अपनी शूद्रवृत्तिको छोड़कर वैश्य बन गये हैं और इसविषयमें उन पर वैश्य जैनोंकी बड़ी भारी संख्याका प्रभाव पड़ा है। जैनोंमें एक दो जातियाँ ऐसी हैं भी जो पहले शूद्र थी, पर अब वैश्यवृत्तिसे निर्वाह करती हैं। दिग्भ्रमरसम्प्रदायके अनुसार जैनसाधु शूद्रोंके यहाँ भोजन नहीं करते, शूद्र मोक्षका अधिकारी नहीं, वह अधिकसे अधिक शुद्ध हो सकता है—मुनि नहीं हो सकता, उसे शायद पूजन करनेकी भी आज्ञा नहीं है। संभव है कि इन संकुचित अधिकारोंका भी इस विषयमें प्रभाव पड़ा हो।

आशा है कि इस प्रश्नपर जैनसमाजके विद्वानोंका चित्त आकर्षित होगा और वे अपने अपने विचार प्रकट करके इसका समाधान करेंगे।



## प्रार्थना ।



( ले०-श्रीयुत पं० गिरिधर शर्मा । )

( १ )

नाथ आपको हम नमते हैं,  
हाथ जोड़ पैरों पड़ते हैं ।  
आप जानते हैं सब स्वामी,  
घटघटके हो अन्तर्यामी ॥

( २ )

हम मानव हैं सहृणु पावें,  
सारे दुर्गुण दूर हटावें ।  
कायरताके पास न जावें,  
वीरपनेको लड़ लड़ावें ॥

( ३ )

निज कर्तव्य कदापि न तज दें,  
सदा सहारा दीनोंको दें ।  
लोकलोकमें जीवन भर दें,  
मुरदोंको भी जीते कर दें ॥

( ४ )

आलसमें नहीं पड़े रहें हम,  
नहीं खुशामद कहीं करें हम ।  
जिस शाखापर आश्रय पावें,  
काट उसे नीचे न गिरावें ॥

( ५ )

सज धज कर हम अकड़ न जावें,  
आपसमें लड़ यश न नसावें ।  
संशयमें पड़ मति न गुमावें,  
आसमानमें उड़ें सुहावें ॥

( ६ )

विद्या ठौर ठौर फैलावें,  
गहरे ज्ञान भेद प्रकटावें ।  
भारत गौरव जगमें छावें,  
सारे जगमें जयी कहावें ॥

( ७ )

नहीं लालचोंमें फँस जावें,  
नहीं किसीसे भय हम खावें ।  
सुदृढ़ रहें निज धर्म निभावें,  
हो स्वार्थीन सदा सुख पावें ॥

( ८ )

वह बल-विक्रम हममें आवे,  
देख जिसे जग अचरज पावे ।  
सिंह चाटने पग लग जावे,  
विजयवाद्य सुरवृन्द बजावे ॥

**नोट**—यह प्रार्थना विद्यार्थियोंको प्रातःकाल पढ़नेके लिए रची गई है । यदि जैनपाठशालाओं और विद्यालयोंके संचालक उचित समझें तो इसे काममें ले आवें । कई संस्थाओंके संचालकोंने ऐसी एक प्रार्थनाके लिए हमसे प्रेरणा भी की थी । -स० ।

आजकल जेंटिलमैन ( सभ्य पुरुष ) बहुत ही साधारण शब्द हो गया है; परन्तु जेंटिलमैन असलमें हैं बहुत कम । जेंटिलमैनीके लिए बाहरी बातोंकी जरूरत नहीं है । अच्छे अच्छे कपड़ों और बड़े बड़े बंगले, कोठियोंकी भी जरूरत नहीं है । असलमें जेंटिलमैन वह है जिसके विचार उदार हैं, उद्देश्य उच्च हैं, सत्य पर जिसका अटल विश्वास है और सत्य ही जिसके जीवनका आधार है, जिसकी आवश्यकतायें बहुत थोड़ी हैं, जिसकी बड़े और छोटे, अमीर गरीब सबके साथ समान सहानुभूति है और जिसको अभिमान छूकर भी नहीं गया । अब बतलाइए, ऐसे आदमी कितने हैं ? आपकी सभामें, आपकी मित्रमंडलीमें कौन कौन इन गुणोंसे विभूषित हैं ? हम ऐसे सैकड़ोंके नाम ले सकते हैं जिनके कोट पतलून बड़े अच्छे बने हुए होते हैं । ऐसे भी बीसो बतला सकते हैं जिनमें बात चीत करने और रहन सहनके तरीके बड़े अच्छे हैं; परन्तु जेंटिलमैन बहुत ही कम हैं । यदि कागज कलम लेकर उनके नाम लिखने बैठें तो शायद सौमें एक दो ही निकलें । -थेकरे ।

## जैनधर्म और जैनदर्शन ।

कलकत्तेसे 'मानसी और मर्मवाणी' नामकी एक उच्च कोटिकी बंगला मासिक-पत्रिका निकलती है। नाटोर-नरेश महाराज श्रीजगदिन्द्रराय और बाबू प्रभातकुमार मुखोपाध्याय बार-एट-ला उसके सम्पादक हैं। इसकी गत आषाढ और श्रावणकी दो संख्याओंमें 'जैनधर्म और दर्शन' शीर्षक एक विचारपूर्ण लेख प्रकाशित हुआ है जिसके लेखक श्रीयुत अम्बुजाक्ष सरकार एम. ए. बी. एल. हैं। पूरा लेख लगभग १९ पृष्ठोंमें समाप्त हुआ है। हम यहाँ अपने पाठकोंके लिए उसके केवल महत्त्वपूर्ण अंशोंका अनुवाद प्रकाशित करते हैं।

“पुण्यभूमि भारतवर्षमें हिन्दू, बौद्ध और जैन इन तीन प्रधान धर्मोंका अभ्युत्थान हुआ है। यद्यपि बौद्धधर्म भारतके अनेक सम्प्रदायों और अनेक प्रकारके आचारों व्यवहारोंमें अपना प्रभाव—अपनी छाप छोड़ गया है; परन्तु वह अपनी जन्मभूमिसे खदेड़ दिया गया है और सिंहल, ब्रह्मदेश, तिब्बत, चीन आदि देशोंमें वर्तमान है। इस समय हमारे देशमें बौद्धधर्मके सम्बन्धमें यथेष्ट आलोचना होती है; परन्तु जैनधर्मके विषयमें अब तक कोई भी उल्लेख योग्य आलोचना नहीं हुई। जैनधर्मके सम्बन्धमें हमारा

ज्ञान बहुत ही परिमित है। स्कूलपाठ्य इतिहासोंके एक दो पाराग्राफोंमें महावीरप्रचारित जैनधर्मके सम्बन्धमें जो अतिशय संक्षिप्त विवरण रहता है, उसको छोड़कर हम कुछ नहीं जानते। जैनधर्मसम्बन्धी विस्तृत आलोचना करनेकी लोगोंकी इच्छा भी होती थी, पर अभीतक उसके पूर्ण होनेका कोई विशेष सुभीता न था। कारण दो चार ग्रन्थोंको छोड़कर जैनधर्मसम्बन्धी अगणित ग्रन्थ अभीतक अप्रकाशित थे; भिन्न भिन्न मठोंके महन्त अपने मठोंके गुप्तगृहोंमें जैनग्रन्थोंको छुपाये हुए थे, इसलिए पाठ करने या आलोचना करनेके लिए वे दुर्लभ थे।

“बौद्धधर्मके समान जैनधर्मकी आलोचना क्यों नहीं हुई, इसके और भी कई कारण हैं। बौद्धधर्म पृथिवीके एक तृतीयांश लोगोंका धर्म है, किन्तु भारतके ३० करोड़ लोगोंमें जैनधर्मावलम्बी केवल मात्र १४ लाख (वास्तवमें १३ लाखसे भी कम) हैं। इसी कारण बौद्धधर्मके समान जैनधर्मके गुरुत्वका किसीको अनुभव नहीं होता। इसके सिवाय भारतमें बौद्धप्रभाव विशेषताके साथ परिस्फुट है। इसलिए भारतके इतिहासकी आलोचनामें बौद्धधर्मका प्रसङ्ग स्वयं ही आकर उपस्थित हो जाता है। अशोकस्तम्भ, चीनयात्री

हुयेनसंगका भारतभ्रमण आदि जो प्राचीन इतिहासकी निर्विवाद बातें हैं उनका बहुत बड़ा भाग बौद्धधर्मके साथ मिला हुआ है। भारतके कीर्तिशाली चक्रवर्ती राजाओंने बौद्धधर्मको राष्ट्रीयधर्मके रूपमें ग्रहण किया था, इसलिए एक समय हिमालयसे लेकर कुमारी तककी समस्त भारतभूमि पीले कपड़ोंसे रंग गई थी। किन्तु भारतीय इतिहासमें जैनधर्मने अपना प्रभाव कहाँतक विस्तृत किया था, यह अबतक भी मालूम नहीं हुआ है। भारतके अनेक स्थानोंमें जैनकीर्तिके जो अनेक ध्वंसावशेष वर्तमान हैं उनके सम्बन्धमें अच्छी तरह अनुसन्धान करके ऐतिहासिक तत्त्वोंके खोजनेकी कोई उल्लेख योग्य चेष्टा नहीं हुई। हाँ, कुछ वर्षोंसे साधारण चेष्टा हुई है। महसूर राज्यके श्रवणबेलगुल नामक स्थानके चन्द्रगिरिपर्वत पर जो थोड़ेसे शिलालेख प्राप्त हुए हैं, उनसे मालूम होता है कि मौर्यवंशके प्रतिष्ठाता महाराज चन्द्रगुप्त जैनमतावलम्बी थे। इस बातको मि. विन्सेंट स्मिथने अपने भारतेतिहासके तृतीय संस्करण ( १९१४ ) में लिखा है; परन्तु इस विषयमें अबतक सब विद्वानोंकी एक राय नहीं हुई है। जैनशास्त्रोंमें लिखा है कि महाराज चन्द्रगुप्त छठे ( पाँचवें ? ) श्रुतकेवली भद्रबाहुके द्वारा जैनधर्ममें दीक्षित हुए थे और महाराज अशोक भी पहले अपने पितामह-गृहीत जैनधर्मके अनुयायी थे; पर पीछे उन्होंने जैनधर्मका परित्याग करके बौद्धधर्म ग्रहण कर लिया था। भारतीय विचारोंपर

जैनधर्म और जैनदर्शनने क्या प्रभाव डाला है, इसका इतिहास लिखनेके समग्र उपकरण अब भी संग्रह नहीं किये गये हैं। पर यह बात अच्छीतरह निश्चित हो चुकी है कि जैनविद्वानोंने न्यायशास्त्रमें बहुत अधिक उन्नति की थी। उनके और बौद्धनैयायिकोंके संसर्ग और संघर्षके कारण प्राचीन न्यायका कितना ही अंश परिवर्जित और परिवर्तित किया गया और नवीन न्यायके रचनेकी आवश्यकता हुई। शाकटायन आदि वैयाकरण, उमास्वाति, सिद्धसेन दिवाकर, भट्टाकलङ्कदेव आदि नैयायिक, टीकाकृत्कुलरवि मल्लिनाथ, कोषकार अमरसिंह, अभिधानकार, हेमचन्द्र, गणितज्ञ महावीराचार्य आदि विद्वान्, जैनधर्मावलम्बी थे। भारतीय विचार-जगत, इन सबका बहुत कुछ ऋणी है।

“अच्छी तरह आलोचना न होनेके कारण अबतक जैनधर्मके विषयमें लोगोंके तरह तरहके ऊँटपटाँग खयाल हो रहे थे। कोई कहता था यह बौद्धधर्मका ही एक भेद है। कोई कहता था कि हिन्दूधर्ममें जो अनेक सम्प्रदाय हैं, उन्हींमेंसे यह भी एक हैं जिसे महावीरस्वामीने प्रवर्तित किया था। कोई कोई कहते थे कि जैन आर्य नहीं है, क्योंकि वे नग्नमूर्तियोंको पूजते हैं। जैनधर्म भारतके मूलनिवासियोंके किसी एक धर्मसम्प्रदायका

१-२ लेखक महाशयका यह अम्र है। कालिदासके ग्रन्थोंके प्रसिद्ध टीकाकार मल्लिनाथ और कोषकार अमरसिंह ये दोनों ही जैन नहीं थे। मल्लिनाथ वेदानुयायी और अमरसिंह बौद्ध थे। —सम्पादक।

केवल एक रूपान्तर है । इस तरह नाना मुनियोंके नाना प्रकार कल्पनाप्रसूत मत फैल रहे थे, जिनकी असारता अब धीरे धीरे प्रकट होती जाती है ।

“ यह अच्छीतरह प्रमाणित हो चुका है कि जैनधर्म बौद्धधर्मकी शाखा नहीं है । महावीर स्वामी जैनधर्मके स्थापक नहीं है, उन्होंने केवल प्राचीन धर्मका प्रचार किया था । महावीर या वर्द्धमानस्वामी बुद्धदेवके समकालिक थे । बुद्धदेवने बुद्धत्व प्राप्त करके धर्मप्रचारकार्यमें व्रती होकर जिस समय धर्मचक्रका प्रवर्तन किया था, उस समय महावीरस्वामी एक प्रसिद्ध धर्मशिक्षक थे । बौद्धोंके त्रिपिटक नामक ग्रन्थमें ‘ नातपुत्त ’ नामक जिस निर्ग्रन्थ धर्मप्रचारकका उल्लेख है, वह नातपुत्त ही महावीर स्वामी हैं । उन्होंने ‘ ज्ञातृ ’ नामक क्षत्रियवंशमें जन्म ग्रहण किया था, इसलिए वे ज्ञातृपुत्र ( पाली-भाषामें जातपुत्त ) कहलते थे । जैनमतानुसार महावीरस्वामी चौबीसवें या अन्तिम तीर्थंकर थे । उनके लगभग २०० वर्ष पहले तेईसवें तीर्थंकर पार्श्वनाथस्वामी हो चुके थे । अभीतक इस विषयमें सन्देह था कि पार्श्वनाथ स्वामी ऐतिहासिक व्यक्ति थे या नहीं; परन्तु डा० हर्मन जैकोबीने सिद्ध किया है पार्श्वनाथने ईस्वीसनसे पहले आठवीं शता-

ब्दिमें जैनधर्मका प्रचार किया था । पार्श्वनाथके पूर्ववर्ती अन्य २२ तीर्थंकरोंके सम्बन्धमें अबतक कोई ऐतिहासिक प्रमाण नहीं मिला है ।

“ तैर्थिक, निर्ग्रन्थ और नग्न नाम भी जैनोंके लिए व्यवहृत होता है । यह तीसरा नाम जैनोंके प्रधान और प्राचीनतम दिगम्बर सम्प्रदायके कारण पड़ा है । मेगास्थनीज इन्हें Gymnosphists या नग्न दार्शनिकके नामसे उल्लेख कर गया है ।

“ ग्रीसदेशमें एक ईलियाटिक नामका सम्प्रदाय हो गया है । वह एक नित्य परिवर्तनरहित अद्वैत सत्तामात्र स्वीकार करके जगतके सारे परिवर्तनों, गतियों और क्रियाओंकी संभावनाको अस्वीकार करता है । इस मतका प्रतिद्वन्द्वी एक हिराक्लीटियन सम्प्रदाय हुआ । वह विश्वतत्त्व ( द्रव्य ) की नित्यता सम्पूर्णरूपसे अस्वीकार करता है । उसके मतसे जगत् सर्वथा परिवर्तनशील है । जगत्त्रोत अवारित गतिसे वह रहा है; एक क्षण भरके लिए भी कोई वस्तु एक भावसे स्थितिशील होकर नहीं ठहर सकती । ईलियाटिक-सम्प्रदाय-प्रचारित उक्त नित्यवाद और हिराक्लीटियनसम्प्रदायप्रचारित परिवर्तनवाद पाश्चात्य दर्शनोंमें समय समय पर अनेकरूपसे नाना समस्याओंके बीच होकर प्रकट हुए हैं । इन दो मतोंके समन्वयकी-मिलानेकी-अनेक वार चेष्टा भी हुई है; परन्तु वह फलवती कभी नहीं हुई । वर्त-

१ दिगम्बर सम्प्रदायके ग्रन्थोंमें महावीरस्वामीके वंशका उल्लेख ‘ नाथ ’ नामसे मिलता है, जो निश्चय ही ‘ ज्ञातृ ’ के प्राकृतरूप ‘ गात ’ का ही रूपान्तर है । —सम्पादक ।

मान समयके प्रसिद्ध फरासीसी दार्शनिक वर्गसोन ( Bergson ) का दर्शन हिरा-क्लीटियनके मतवादका ही रूपान्तर है। वेदान्त दर्शनके नित्यवाद और बौद्धदर्शनके क्षणिकवादमें भी यह सदाका दार्शनिक विवाद प्रकाशमान हो रहा है। वेदान्तके मतसे केवल नित्य—शुद्ध—बुद्ध—मुक्त—सत्य—स्वभाव चैतन्य ही सत् है, शेष जो कुछ है वह केवल नामरूपका विकार मायाप्रपञ्च—असत् है। शङ्कराचार्यने सत्शब्दकी जो व्याख्या की है उसके अनुसार इस दिखलाई देनेवाले जगत्प्रपञ्चकी कोई भी वस्तु सत् नहीं हो सकती। “यद्विषया बुद्धिर्न व्यभिचरति तत्सत्, यद्विषया बुद्धिर्व्यभिचरति तद-सत्।”—गीता, शंकरभाष्य २—१६। भूत भविष्यत् वर्तमान इन तीन कालोंमें जिस वस्तुके सम्बन्धमें बुद्धिका व्यभिचार नहीं होता, वह सत् है और जिसके सम्बन्धमें होता है—वह असत् है। जो वर्तमान समयमें है, वह यदि अनादि अतीतके किसी समयमें नहीं था और अनन्त भविष्यतके भी किसी समयमें नहीं रहेगा, तो वह सत् नहीं हो सकता—वह असत् है। सत्शब्द परिवर्तनका प्रतियोगी है। जिसमें परिवर्तन होता है, हुआ है और होनेकी संभावना है वह असत् है। परिवर्तनशील असद्रस्तुके साथ वेदान्तका कोई सम्पर्क नहीं है। वेदान्तदर्शन केवल अद्वैत सद्ब्रह्मका तत्त्वानुसन्धान करता है। वेदान्तकी यही प्रथम बात है ‘अयातो ब्रह्मजिज्ञासा’ और यही अन्तिम बात है।

क्योंकि—“तस्मिन् विज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातं भवति।”

“वेदान्तके समान बौद्धदर्शनमें कोई त्रिकाल अव्यभिचारी नित्यवस्तु नहीं मानी गई। बौद्ध क्षणिकवादके मतसे “सर्वं क्षणं क्षणं।” जगत्स्रोत अप्रतिहत या अरोक-गतिसे बराबर वह रहा है—क्षणभरके लिए भी कोई वस्तु एक ही भावसे एक ही अवस्थामें स्थिर होकर नहीं रह सकती। परिवर्तन ही जगतका मूलमंत्र है। जो इस क्षणमें मौजूद है, वह आगामी क्षणमें ही नष्ट होकर रूपान्तरित हो जाता है। इस प्रकार अनन्त मरण और अनन्त जीवनोंकी अनन्त क्रीडायें इस विश्वनाटकमें लगातार हुआ करती हैं। यहाँ स्थिति, स्थैर्य, नित्यता असंभव है।

“स्याद्वादी जैनदर्शन वेदान्त और बौद्ध-मतकी आंशिक सत्यता स्वीकार करके कहता है कि विश्वतत्त्व या द्रव्य नित्य भी है और अनित्य भी है। वह उत्पत्ति, ध्रुवता और विनाश इन तीन प्रकारकी परस्परविरुद्ध अवस्थाओंसे युक्त है। वेदान्त-दर्शनमें जिस प्रकार स्वरूप और तटस्थ लक्षण कहे गये हैं, उसी प्रकार जैनदर्शनमें प्रत्येक वस्तुको समझानेके लिए दो तरहसे निर्देश करनेकी व्यवस्था है। एकको कहते हैं निश्चयनय और दूसरेको कहते हैं व्यवहार नय। स्वरूपलक्षणका जो अर्थ है, ठीक वही अर्थ निश्चयनयका है। वह वस्तुके निज भाव या स्वरूपको बतलाता है। व्यवहार-

नय वेदान्तके तटस्थ लक्षणके अनुरूप है । उससे वक्ष्यमाण वस्तु दूसरी किसी वस्तुकी अपेक्षासे वर्णित होती है । द्रव्य निश्चय नयसे ध्रुव है किन्तु व्यवहारनयसे उत्पत्ति और विनाशशील है । अर्थात् द्रव्यके स्वरूप या स्वभावकी अपेक्षा देखा जाय तो वह नित्यस्थायी पदार्थ है, किन्तु नियत परिदृश्यमान व्यवहारिक जगतकी अपेक्षा देखा जाय तो वह अनित्य और परिवर्तनशील है । द्रव्यके सम्बन्धमें नित्यता और परिवर्तन आंशिक या आपेक्षिक भावसे सत्य है—पर सर्वथा एकान्तिक सत्य नहीं है । वेदान्तने द्रव्यकी नित्यताके ऊपर ही दृष्टि रक्खी है और भीतरकी वस्तुका सन्धान पाकर, बाहरके परिवर्तनमय जगत्प्रपञ्चको तुच्छ कहकर उड़ा दिया है; और बौद्ध क्षणिकवादने बाहरके परिवर्तनकी प्रचुरताके प्रभावसे रूप—रस—गन्ध—शब्द—स्पर्शादिकी विचित्रतामें ही मुग्ध होकर, उसके भीतरी, बहिर्वैचित्र्यके कारणीभूत, नित्य-सूत्रको खो दिया है । पर स्याद्वादो जैनदर्शनने भीतर और बाहर, आधार और आधेय, धर्म और धर्मी, कारण और कार्य, अद्वैत और विचित्र दोनोंको ही यथास्थान स्वीकार कर लिया है ।

“ इस तरह स्याद्वादने, विरुद्ध मतवादोंकी मीमांसा करके उसके अंतर्निहित आपेक्षित सत्यको स्वीकार करके उसे पूर्णता प्रदान की है । विलियम जेम्स नामके विद्वान् द्वारा प्रचारित Pragmatism मतवादके साथ स्याद्वादकी

अनेक अंशमें तुलना हो सकती है । स्याद्वादका मूलसूत्र जुदे जुदे दर्शन शास्त्रोंमें जुदे जुदे आकारमें स्वीकृत हुआ है । यहाँ तक कि शङ्कराचार्यने पारमार्थिक सत्यतासे व्यवहारिक सत्यताको जिस कारण विशेष किया है, वह इस स्याद्वादके मूलसूत्रके साथ अभिन्न है । शंकराचार्यने परिदृश्यमान या दिखलाई देनेवाले जगतका अस्तित्व अस्वीकार नहीं किया है, उन्होंने केवल इसकी पारमार्थिक सत्ता अस्वीकार की है । बौद्ध विज्ञानवाद और शून्यवादके विरुद्ध उन्होंने जगतकी व्यवहारिक सत्ता अतिशय दृढताके साथ प्रमाणित की है । समतल भूमिपर चलते समय एकतल, द्वितल, त्रितल आदि उच्चताके नाना प्रकारके भेद हमें दिखलाई देते हैं; किन्तु बहुत ऊँचे शिखरसे नीचे देखनेपर सतखने महल और इकहरी कुटियामें किसी प्रकारका भेद नहीं जान पड़ता । इसी तरह ब्रह्मबुद्धिसे देखनेपर जगत मायाका विकास ऐन्द्रजालिक स्वप्नमात्र—अनित्य है; किन्तु साधारण बुद्धिसे देखनेपर जगतकी सत्ता स्वीकार करनी ही पड़ती है । दो प्रकारका सत्य दो प्रकार Points of View से उत्पन्न है । वेदान्तसारमें मायाको जो प्रसिद्ध संज्ञा दी गई है, उससे भी इस प्रकारकी भिन्न दृष्टिजात भिन्नसत्यता स्वीकृत होती है । बौद्ध दृश्यवादमें शून्यका जो व्यतिरेकमुखी लक्षण दिया है, उसमें भी स्याद्वादकी छाया पाई जाती है । “ सदसदुभयानुभूय—चतुष्कोटिविनिर्मुक्तं शून्यत्वम् ”— अर्थात् अ-

स्ति, नास्ति, अस्तिनास्ति दोनों, और आस्त नास्ति दोनों नहीं, इन चार प्रकारकी भावनाओंके जो बहिर्भूत है, उसे शून्यत्व कहते हैं। इस प्रकार पूर्वी और पश्चिमी दर्शनोंके जुदे जुदे स्थानोंमें स्याद्वादका मूलसूत्र स्वीकृत होनेपर भी, स्याद्वादको स्वतंत्र दार्शनिक मतवादका उच्चासन देनेका गौरव केवल जैनदर्शनको ही मिल सकता है।

“जैनदर्शनके विश्वतत्त्व या द्रव्यके सम्बन्धमें जो कुछ कहा गया है उससे ही मालूम हो जायगा कि जैनदर्शन यह स्वीकार नहीं करता कि सृष्टि किसी खास समयमें उत्पन्न हुई है। एक ऐसा समय था जब सृष्टि नहीं थी, सर्व शून्यमय था, उस महाशून्यके भीतर केवल सृष्टिकर्ता अकेला विराजमान था और उसी शून्यसे किसी एक समयमें उसने इस ब्रह्माण्डको बनाया— इस प्रकारका मतवाद दार्शनिक दृष्टिसे अतिशय भ्रमपूर्ण है। शून्यसे—असत्से—सत्की उत्पत्ति नहीं हो सकती। सत्कार्यवादियोंके मतसे केवल सत्से ही सत्की उत्पत्ति होना संभव है। शून्यसे विद्यते भावो नाभावो विद्यते

“जैनदर्शनमें जीवतत्त्वकी जैसी विस्तृत आलोचना है वैसी और किसी भी दर्शनमें नहीं है।

आलोचना ह १५५५ ५५५५ ५५५५ ५५५५  
नहीं है।

“वेदान्त दर्शनमें संचित, क्रियमाण और प्रारब्ध इन तीन प्रकारके कर्मोंका वर्णन है। जैनदर्शनमें इन्हींको यथाक्रम सत्ता, बन्ध और उदय कहा है। दोनों दर्शनोंमें इनका स्वरूप भी एक सा है।

“सयोग केवली और अयोग केवली अवस्थाके सहित हमारे शास्त्रोंकी जीवन्मुक्ति और विदेहमुक्तिकी तुलना हो सकती है। जुदे जुदे गुणस्थानोंके समान मोक्षप्राप्तिकी जुदी जुदी अवस्थायें हमारे यहाँ भी स्वीकृत हुई हैं। योगवासिष्ठमें शुभेच्छा, विचारणा, तनुमानसा, सत्त्वापत्ति, संसक्ति, पदार्थाभावनी और न्यूर्यगा इन सात ब्रह्मविद् भूमियोंका वर्णन किया गया है।

“पूर्वकथित संवर तत्त्व और प्रतिमापालन जैनदर्शनका चारित्र्य भाग है। इससे एक ऊँचे प्रकारका नैतिक आदर्श प्रतिष्ठापित हुआ है। सर्व प्रकार आसक्तिरहित होकर कर्म करना ही चारित्र्यसाधनकी मूल बात है। आसक्तिके कारण ही कर्मबन्ध होता है; अनासक्तहोकर कर्म करनेसे उसके द्वारा कर्मबन्ध नहीं होता। भगवद्गीतामें निष्काम धर्मविस्तारित करके व्यवहारिक जीवितका योग पर नियमित और विधिबद्ध करके एक उपहासास्पद सीमा पर पहुँचा दिया है।

उपहासास्पद सीमा पर पहुँचा दिया है।



इसके सम्बन्धमें जितने विधिनिषेध हैं उन सबको मानकर चलना इस बीसवीं शताब्दीके जीवनसंग्राममें युक्तियुक्त और संभवपर है या नहीं, यह विचारणीय है ।

“जैनधर्ममें अहिंसाको इतनी प्रधानता क्यों दी गई है, यह ऐतिहासिकोंकी गवेषणाके योग्य है । जैनसिद्धान्तमें अहिंसा शब्दका अर्थ व्यापकसे व्यापकतर होकर, अपेक्षाकृत अर्वाचीन ग्रन्थोंमें वह गीतोक्त निष्काम धर्मके रूपान्तर भावमें ग्रहण किया गया है । तो भी, पहले अहिंसा शब्द साधारण प्रचलित अर्थमें ही व्यवहृत होता था, इस विषयमें कोई भी सन्देह नहीं है । वैदिक युगमें यज्ञ-क्रियामें पशुहिंसा निरतिशय निष्ठुर सीमा पर जा पहुँची थी । इस क्रूर कर्मके विरुद्ध उस समय कितने ही अहिंसावादी सम्प्रदायोंका उदय हुआ था, यह बात एक तरहसे सुनिश्चित है । वेदमें ‘मा हिंस्यात् सर्व भूतानि’ यह साधारण उपदेश रहनेपर भी, यज्ञ कर्ममें पशुहत्याकी अनेक विशेष विधियोंका उपदेश होनेके कारण, वह साधारण विधि केवल विधिके रूपमें ही पर्यवसित होगई थी, पद पद पर व्याहृत और अतिक्रान्त होकर उसका कल्याणकर उपदेश विस्मृतिके गर्भमें विलीन हो गया था और अन्तमें ‘पशु यज्ञके लिए ही बनाये गये हैं,’ यह अद्भुत मतवाद प्रचलित हुआ था \* । इसके फलसे वैदिक कर्मकाण्ड आलम्बित पशुओंके

रक्तसे लाल होकर सब तरहके सात्विक भावोंका विरोधी हो गया था । जैन कहते हैं कि उस समय यज्ञकी इस नृशंस पशुहत्याके विरुद्ध जो कई मत खड़े हुए थे, उनमें जैन सबसे पहले थे । ‘मुनयो वातवसनाः’ कहकर ऋग्वेदमें जो नग्नमुनियोंका उल्लेख है, जैनोंका कथन है कि वे ही जैन दिगम्बर संन्यासी हैं ।

“बुद्धदेवको लक्ष्य करके जयदेवने कहा है—

निन्दासि यज्ञविधेरहह श्रुतिजातं  
सदयहृदय दर्शितपशुघातम्’

किन्तु यह अहिंसातत्त्व जैनधर्मके साथ इस प्रकार अझाझी भावमें संयुक्त है कि जैनधर्म बौद्धधर्मके बहुत पहलेका स्वीकृत होनेपर पशुघातात्मक यज्ञविधिके विरुद्ध पहले खड़े होनेकी प्रशंसा बुद्धदेवकी अपेक्षा जैनधर्मको ही मिलेगी । वेदविधिकी निन्दा करनेके कारण हमारे शास्त्रोंमें चार्वाक, जैन और बौद्ध पाषण्ड या नास्तिक मतके नामसे विख्यात हैं । इन तीनों सम्प्रदायोंकी झूठी निन्दाकरके जिन शास्त्रकारोंने अपनी साम्प्रदायिक संकीर्णताका परिचय दिया है, उनके इतिहासकी पर्यालोचना करनेसे मालूम होगा कि जो ग्रन्थ जितना ही प्राचीन है, उसमें बौद्धोंकी अपेक्षा जैनोंपर उतना ही अधिक गाली गलौज है । अहिंसावादी जैनोंके निरीह मस्तकके ऊपर किसी किसी शास्त्रकारने तो श्लोकपर श्लोक ग्रथित करके मूसलधार वर्षा की है । उदाहरणके तौरपर विष्णुपुराणको ले लीजिए । अभी तककी खोजोंके अनुसार

\* यज्ञार्थे पशवः सृष्टाः स्वयमेव स्वयंभुवा ।

अतस्त्वां घातयिष्यामि तस्माद्यज्ञे वधोऽवधः ॥

विष्णुपुराण सारे पुराणोंसे प्राचीनतम न होने पर भी अतिशय प्राचीन है। इसके तृतीयांशके सत्रहवें और अठारहवें अध्याय केवल जैनोंकी निन्दासे पूर्ण हैं। नग्नदर्शनसे श्राद्धकार्य भ्रष्ट हो जाता है, और नग्नके साथ संभाषण करनेसे उस दिनका पुण्य नष्ट हो जाता है। शतधनु नामक राजाने एक नग्न पाषण्डसे संभाषण किया था, इस कारण वह कुत्ता, गीदड़, भेड़िया, गीध और मोरकी योनियोंमें जन्म धारण करके अन्तमें अश्वमेध यज्ञके जलसे स्नान करनेपर मुक्ति-लभ कर सका। जैनोंके प्रति (वैदिकोंको) प्रबल विद्वेष निम्नलिखित श्लोकसे प्रकट होता है:—

न पठेत् यावन्ती भाषां प्राणैः कण्ठगतैरपि ।

हस्तिना पीडयमानोऽपि न गच्छेज्जिनमन्दिरम् ॥

“यद्यपि जैन लोग अनन्त मुक्तात्माओंकी उपासना करते हैं, तो भी वास्तवमें वे व्यक्तित्वविरहित पारमात्म्य स्वभावकी ही पूजा करते हैं। व्यक्तित्वरहित होनेके कारण ही जैनपूजापद्धतिमें वैष्णव और शाक्त-मतके समान भक्तिकी विचित्र तरङ्गभङ्गोंकी संभावना बहुत ही कम है।

“बहुत लोग यह भूल कर रहे थे कि बौद्ध मत और जैनमतमें भिन्नता नहीं है। पर दोनों धर्मोंमें कुछ अंशोंमें समानता होने पर भी असमानताकी कमी नहीं है। समानतामें पहली बात तो यह है कि दोनोंमें अहिंसा-नीतिकी अतिशय प्रधानता है। दूसरे जिन, सुगत, अर्हत्, सर्वज्ञ, तथागत, बुद्ध आदि नाम बौद्ध और जैन दोनों ही अपने अपने उपास्य

देवोंके लिए प्रयुक्त करते हैं। तीसरे दोनों ही धर्मवाले बुद्धदेव या तीर्थकरोंकी एक ही प्रकारकी पाषाणप्रतिमायें बनवाकर चैत्यों या स्तूपोंमें स्थापित करते हैं और उनकी पूजा करते हैं। स्तूपों और मूर्तियोंमें इतनी अधिक सदृशता है कि कभी कभी किसी मूर्ति और स्तूपका यह निर्णय करना कि यह जैन है या बौद्ध, विशेषज्ञोंके लिए भी कठिन हो जाता है। इन सब बाहरी समानताओंके सिवाय मतवादमें भी दोनों धर्मोंकी कहीं कहीं सदृशता दिखती है; परन्तु उन सब विषयोंमें हिन्दूधर्मके साथ जैन और बौद्ध दोनोंका ही प्रायः ऐक्यमत्य है। इस प्रकार बहुत सी समानतायें होने पर भी दोनोंमें बहुत कुछ विरोध है। पहला विरोध, बौद्ध क्षणिकवादी है; पर जैन क्षणिकवादकी ऐकान्तिकता स्वीकार नहीं करता। जैनधर्म कहता है कि कर्मफलान्तक जन्मान्तरवादके साथ क्षणिकवादका सामञ्जस्य नहीं हो सकता। क्षणिकवाद माननेसे कर्मफल मानना असंभव है। जैनधर्ममें अहिंसा नीतिकी जितनी ज्यादती है उतनी बौद्धोंमें नहीं है। अन्य द्वारा मारे हुए जीवका मांस खानेकी बौद्धधर्म मनाई नहीं करता, उसमें स्वयं हत्या करना ही मना है। बौद्धदर्शनके पञ्च स्कन्दके समान कोई मनोवैज्ञानिक तत्त्व भी जैनदर्शनमें नहीं माना गया। बौद्धदर्शनमें जीवपर्याय अपेक्षाकृत सीमाबद्ध है, जैनदर्शनके समान उदार और व्यापक नहीं है। हिन्दूधर्मके समान जैनधर्ममें मुक्तिके मार्गमें जिसप्रकार

उत्तरोत्तर सीढियोंकी बात है, वैसी बौद्ध धर्ममें नहीं है । जैन जातिविचार मानते हैं, पर बौद्ध नहीं मानते ।

“जैन और बौद्धको एक समझनेका कारण जैनमतकी अच्छी तरह आलोचना न करना, इसके सिवाय और कुछ नहीं है । हमारे शास्त्रोंमें कहीं भी दोनोंको एक समझनेकी मूल नहीं की गई है । वेदान्तसूत्रमें जुदे जुदे स्थलों पर जुदे जुदे हेतुवादसे बौद्ध और जैन-मतका खण्डन किया गया है । शंकर दिग्वि-जयमें लिखा है कि शंकराचार्यने काशीमें बौद्धोंके साथ और उज्जयिनीमें जैनोंके साथ शास्त्रार्थ किया था । यदि दोनों मत एक होते, तो उनके साथ दो जुदे जुदे स्थानोंमें दो बार शास्त्रार्थ करनेकी आवश्यकता नहीं थी । प्रबोधचन्द्रोदय नाटकमें बौद्ध भिक्षु और जैन दिगम्बरकी लड़ाईका वर्णन है ।

“ हिन्दूधर्मके साथ जैनधर्मका अनेक स्थलोंमें सादृश्य और अनेक स्थलोंमें विरोध है; परन्तु विरोधकी अपेक्षा सादृश्य ही अधिक है । इतने दिनोंसे कितने ही मुख्य विरोधोंकी ओर दृष्टि रखनेके कारण वैर विरोध बढ़ता रहा और लोगोंको परस्पर अच्छी तरह देख सकनेका अवसर नहीं मिला । प्राचीन हिन्दू सब सह सकते थे; परन्तु वेदपरित्याग उनकी दृष्टिमें अक्षम्य अपराध था ।

“हिन्दू धर्मका जन्म-कर्म-वाद जैन और बौद्ध दोनों ही धर्मोंका मेरुदण्ड है और वह

दोनों ही धर्मोंमें अविकृत रूपसे ले लिया गया है । जैनोंने कर्मको एक प्रकारके परमाणुरूप सूक्ष्म पदार्थके रूपमें कल्पना करके, केवल कितनी ही गुरुतर दार्शनिक समस्याओंकी सृष्टि की है, किन्तु उसमें कर्म-फलवादकी मूल बात पूर्णरूपसे सुरक्षित है । हिन्दूदर्शनका दुःखवाद और जन्म-मरणात्मक दुःखरूप संसार सागरसे पार होनेके लिए निवृत्तिमार्गानुसारी मोक्षान्वेषण— यह हिन्दू बौद्ध और जैन, सबका ही मुख्य सूत्र है । निवृत्ति तपके द्वारा कर्मबन्ध क्षय होने पर आत्मा कर्मबन्धसे मुक्त होकर स्वभावको प्राप्त करेगा और अपने नित्य-बुद्ध-शुद्ध स्वभावके अमित गौरवसे महिमान्वित होगा । उस समय

भियते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः ।

क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे ॥

यह स्पष्ट भावसे जैन और हिन्दू शा-स्त्रोंमें घोषित हुआ है ।

“ जन्म जन्मातरोंमें कमाये हुए कर्मोंको वासनाविध्वंसी निवृत्तिमार्गके द्वारा क्षय करके परमपदप्राप्तिकी साधना हिन्दू, जैन और बौद्ध तीनों ही धर्मोंमें एक ही समान उपदेश की गई है । दार्शनिक मतवादके विस्तारमें और साधनाकी क्रियाओंकी विशि-ष्टतामें भिन्नता हो सकती है, किन्तु उद्देश्य और गन्तव्यस्थल सबका ही एक है—

स्वीनां वैचित्र्याद्बुद्धुटिलनानापथजुषां

नृणामेको गम्यस्त्वमासि पयसामर्णव इव ।

महिम्नस्तोत्रकी यह सर्वधर्म-बहुमान—

कारिणी उदारता हमारे शास्त्रोंमें बारबार उपदिष्ट होने पर भी संकीर्ण साम्प्रदायिक बुद्धिजनित विद्वेष हमारे प्राचीन ग्रन्थोंमें जहाँ तहाँ प्रकट हुआ है; किन्तु आजकल हमने उस संकीर्णताकी क्षुद्र मर्यादा अतिक्रम करके यह कहना सीखा है—

शं शैवाः ससुपासते शिव इति ब्रह्मेतिवेदान्तिनो  
बौद्धा बुद्ध इति प्रमाणपटवः कर्त्तैति नैयायिकाः ।  
अर्हन्वित्यथ जैनशासनरताः कर्मैति मीमांसकाः  
सोऽयं वो विदधातु वाञ्छितफलं त्रैलोक्यनाथो हरिः ॥

“ ईसाकी आठवीं सदीमें इसी प्रकारके महान् उदार भावोंसे अनुप्राणित होकर जैनाचार्य भट्ट अलङ्कदेव कह गये हैं:—

यो विश्वं वेद वेद्यं जननजलनिधेर्भङ्गिनः पारदृष्ट्वा  
पौर्वापर्याविरुद्धं वचनमनुपमं निष्कलङ्कं यदीयम् ।  
तं वन्दे साधुवन्द्यं सकलगुणनिधिं ध्वस्तदोषद्विषन्तं  
बुद्धं वा वर्द्धमानं शतदलनिलयं केशवं वा शिवं वा । ”

**सम्पादकीय नोट**—इस लेखमें हिन्दू-बौद्ध और जैनधर्मके विषयमें जो तुलनात्मक पद्धतिसे विचार किया गया है और दोनोंमें जो समानता बतलाई गई है, उसपर हमारे समाजके विद्वानोंको विचार करना चाहिए और जो भ्रम हों उन पर प्रकाश डालना चाहिए ।

—आज हमें अपने विचार प्रकट करने चाहिए और आनेवाले दूसरे दिन उन पर विशेषरूपसे प्रकाश पड़नेपर यदि उनमें भ्रम मालूम हो तो उन्हें बदल देना चाहिए, परित्याग कर देना चाहिए अथवा उन्हींको परिमार्जित करके रखना चाहिए ।— ‘राल्फ वाल्डो ट्राइन’ ।

—जो मनुष्य कभी अपने मन्तव्योंको नहीं बदलते, वे सत्यकी अपेक्षा अपने आपको विशेष पचाहते हैं ।— ‘जोवर्ट’

## काश्मीरका इतिहास ।

( ले०—श्रीयुत बाबू सुपाश्वदास गुप्त बी. ए. । )  
( गतांकसे आगे । )

गोनन्दीय वंश ( ११८२-१८० बी. सी. । )

प्रथम अभिमन्युके पश्चात् तृतीय गोनन्द राज्यका अधिकारी हुआ । यही गोनन्दीय वंशका संस्थापक माना जाता है । इसका भूतपूर्व प्रथम और द्वितीय गोनन्दोंके साथ कुछ सम्बन्ध था या नहीं, यह नहीं मालूम होता । यह भी आश्चर्यजनक ही है कि, प्रथम दो गोनन्दोंको छोड़कर तृतीय गोनन्द अपने वंशका चलानेवाला कहा जाता है । संभवतः इसका कारण यह हो सकता है कि, इसके वंशमें जितने राजे हुए हैं, सब पिता पुत्र, हैं । दूसरे वंशका कोई राजा इसमें शामिल नहीं है । डाक्टर स्टाइन इसके वंशको ऐतिहासिक मानते हैं, पर इसको नहीं । निस्सन्देह जिस वंशने एक हजार वर्षोंतक राज्य किया और जिसमें मिहिरकुल जैसा प्रसिद्ध ऐतिहासिक पुरुष हुआ, उसे अनैतिहासिक बताना ठेड़ी खीर है । पर समझमें नहीं आता कि, जब गोनन्दीय वंशको ऐतिहासिक मानते हैं, तब वंशप्रवर्तक गोनन्दको ऐतिहासिक क्यों नहीं माना जाय । यह दूसरी बात है कि, उसके सम्बन्धमें राजतरंगिणीमें जो दो एक अलौकिक बातें लिखी हैं, वे विश्वसनीय न हों । राजतरंगिणीके अनुसार वह बौद्ध धर्मका विना-

शक्तार्ता और ब्राह्मण धर्मका उद्धारकर्ता हुआ है। ब्राह्मणधर्मके पुनर्जीवित होनेसे देशमें संजीवनी शक्तिका प्रवेश और राज्यमें प्रीतिका आविर्भाव हुआ। प्राचीन ढँगसे पूजा पाठ होने लगे। कल्हण लिखता है कि, जब श्रमण नामक एक बौद्ध वैरागी उसकी स्त्रीको बहका कर ले गया, तब क्रोधमें आकर उसने हजारों विहारोंको नष्ट कर डाला और हजारों गाँव ब्राह्मणोंको दान दे दिये। इसने ११८२ से ११४७ बी. सी तक ३५ वर्ष राज्य किया। इसके बाद इसके पुत्रपौत्रादि चार राजे हुए, जिन्होंने ११४७ से ९९३ बी. सी. तक १५४ वर्ष राज्य किया। इनके नाम प्रथम विभीषण, इन्द्रजीत, रावण और द्वितीय विभीषण हैं। राजतरंगिणीमें इनके बारेमें कोई ऐसी बात नहीं, जो उल्लेख योग्य है। वास्तवमें कल्हणने इनके सम्बन्धमें कुछ लिखा ही नहीं है।

द्वितीय विभीषणके बाद उसका पुत्र प्रथम नर (किन्नर) सिंहासनका स्वामी हुआ। उसने ९९३ से ९५२ बी. सी तक ४१ वर्ष राज्य किया। कल्हणने इसका बड़ा लम्बा चौड़ा वृत्तान्त दिया है। इमारतें आदि बनाकर इसने काश्मीरकी शोभा बढ़ाई। प्रेम पाशमें पड़कर इसने एक ऐसा अनुचित कार्य किया जिससे इसका सर्वनाश हो गया। लिखा है कि, किसी नाराको एक अति सुन्दर कन्या थी, जिसका विवाह, एक ब्राह्मणसे हुआ था। एकवार अचानक

राजाने उसे देख पाया और वह उसकी सुन्दरतापर मुग्ध हो गया। जब बहुत को-शिश करने पर भी वह उसके हाथ न आई, तब उसने अपने किसी नौकरको उसके घर उसे बलपूर्वक पकड़ लानेको भेजा। स्त्री पुरुषको जब नौकरके घरमें प्रवेश करनेकी आहट मिली, तब वे दोनों घरके पीछेकी खिड़कीके रास्ते निकल भागे। अन्तमें नरको अपने कुकर्मका फल भोगना पड़ा और उसका धर्मात्मा लड़का सिद्ध सिंहासनका उत्तराधिकारी हुआ। नरने वितस्ता नदीके किनारे चक्रधर गाँवके पास एक सुन्दर नगर बसाया था, जिसका नाम उसने नरपुर रक्खा। यह नगर आधुनिक विजबहोर (वृजविहार) कस्बेके पास था। इस स्थानको देखने और यहाँसे निकले हुए खण्डहरों पर गौर करनेसे विश्वास होता है कि, किसी समय यहाँ एक सुन्दर नगर अवश्य था। नरके उत्तराधिकारी सिद्धके विषयमें केवल इतना ही लिखा है, कि वह अपने पिताके समान कुलांगार नहीं बल्कि एक धर्मात्मा और सत्यव्रत राजा था। लिखा है कि, वह धर्मबलसे सशरीर स्वर्गको चला गया। उसने ९५२ से ८९२ बी. सी. तक ६० वर्ष राज्य किया। उसके बाद उत्पलाक्ष, हिरण्ययक्ष, हिरण्यकुल और वसुकुल नामक चार साधारण राजे हुए, जिनके विषयमें राज्यकालके सिवा और कुछ नहीं लिखा है। इन्होंने ७०४ बी. सी. तक १८८ वर्ष राज्य किया।

वसुकुलके बाद प्रसिद्ध ऐतिहासिक व्यक्ति उसका पुत्र मिहिरकुल राजा हुआ, जिसने ७०४ से ६३४ बी. सी. तक ७० वर्ष राज्य किया। राजतरंगिणीके बाहर इसके सम्बन्धमें जो प्रमाण मिले हैं, उनसे यह विश्वास होता है कि वह छठी सदी ए. डी. के पूर्वार्धमें काश्मीरमें राज्य करता था। यह वहीं श्वेतांग हूण है, जिसके सम्बन्धमें हम इतना पढ़ते हैं। अपने पिता तोरामणके बाद ९१९ ए. डी. में उसके राज्यका उत्तराधिकारी होनेकी बात पहले पहल डाक्टर फ्लीटने शिलालेखादिके आधारोंपर निश्चय की थी। समझमें नहीं आता, किस प्रकार कल्हणने वसुकुलको मिहिरकुलका पिता और उसके राज्य करनेका समय १२०० वर्ष पहले ठहराया है। निस्सन्देह इस जगह कल्हणने अन्दाज, किम्बदन्ती अथवा किसी अनैतिहासिक तथा अविश्वसनीय प्रमाणसे काम लिया है। क्योंकि प्रसिद्ध चीनी यात्री हुयेनसंग तो उसकी क्रूरता और अत्याचारोंका वर्णन करता ही है, उसके पहलेका एक दूसरा चीनी यात्री भी जिसका नाम संगयन था, मिहिरकुलसे स्वयं भेट करनेका वृत्तान्त लिखता है। इसमें उसने उसे क्रूर राजाकी उपाधि दी है। यह बात भी छठी सदीकी ही है। इससे स्पष्ट है कि मिहिरकुलका समय छठी शताब्दीके सिवा दूसरा नहीं हो सकता। दूसरी बात यह भी है कि कल्हणने उसके सम्बन्धमें जितनी बातें लिखी हैं सभी इन यात्रियोंके वर्णनसे

मिलती हैं और विश्वसनीय हैं। यदि मिहिरकुल कल्हणके लिखे अनुसार १२०० वर्ष पहले हुआ समझा जाय, तो राजतरंगिणीमें कुछ ऐसी अलौकिक बातें भी मिलनी चाहिए थीं; जैसी और राजाओंके विषयमें कही गई हैं और जिनपर किसीका विश्वास नहीं होता; क्योंकि १२०० वर्षोंमें ऐसी बातोंका ऐसे प्रसिद्ध राजाके सम्बन्धमें गढ़ा जाना संभव ही नहीं, बल्कि स्वाभाविक भी है। डाक्टर फ्लीटका कहना है कि, मिहिरकुलके राज्यका विस्तार काबुल वैलीसे मध्य भारत तक था और जब ९३० ए. डी. के लगभग वह अपने शत्रुओं द्वारा वहाँसे निकाल भगाया गया, तब उसने काश्मीरमें आकर शरण ली और वहीसे वह छः वर्षों ( ९४४ से ९५० ) तक उसे पुनः प्राप्त करनेका उद्योग करता रहा। ऊपर मैंने उसके छठी सदीमें होनेका जो दूसरा प्रमाण दिया है, उसके उत्तरमें राजतरंगिणीमें वर्णन किया हुआ उसके विस्तृत विजयका वृत्तान्त पेश किया जासकता है। पर स्मरण रहे कि, मुजमालुत-तवारीखमें भी इसका वर्णन सुरक्षित है। उसकी क्रूरताके दो एक उदाहरण जो राजतरंगिणीमें दिये हुए हैं, और जिनका चीनीयात्री भी जिक्र करते हैं, पाठकोंके विनोदार्थ यहाँ दिये जाते हैं। एक बार वह चन्द्रकुल्या नामक नदीकी धाराको दूसरी ओर बहा लेजानेके अभिप्रायसे प्रयत्न कर रहा था कि, रास्तेमें उसे एक ऐसी चट्टानका सामना करना पड़ा, जो उससे मस नहीं

होती थी। स्वप्नमें उसे मालूम हुआ कि, यह चट्टान पतिव्रता स्त्रीके सिवा दूसरेसे हट नहीं सकती। पतिव्रता होनेका दम भरने-वाली कितनी ही स्त्रियोंने आजमाइशकी, पर कुछ फल न हुआ। अन्तमें एक कुम्हारकी चन्द्रावती स्त्रीने उसे स्थानान्तरित कर दिया। इसपर राजाको बड़ा क्रोध आया और उसने उच्चोकुलोद्भव तीन करोड़ स्त्रियोंको उनमें पति, पुत्र और भाइयों सहित मरवा डाला ! इसीसे आनेवाली सन्तानने उसे 'त्रिकोटिहन' की उपाधिसे विभूषित किया। हुयेनसंगने भी काश्मीरमें उसके विषयमें ऐसा कहा जाते सुना था।

लिखा है कि जब वह हिन्दुस्थानको विजय कर काश्मीर लौट रहा था, तब उसने रास्तेमें पर्वतसे गिरे हुए एक हाथीको आलाप करते सुना। उससे वह इतना मुग्ध हुआ कि, उसने अपने सौ हाथियोंको पहाड़परसे कई हजार फुट नीचे गिराये जानेकी आज्ञा दी। अनुसंधान करनेसे इस स्थानका पता 'पीर पाँजाल' पासके पास लगा है। इसे लोग 'हस्तिभंज' कहते हैं। संभवतः यह वही स्थान है। यह ब्राह्मणधर्मका पोषक और बौद्धका विनाशकर्त्ता था। इसने कितनी ही बौद्धसंस्थायें नष्ट भ्रष्ट कर दीं। इसकी तरह बहुत कम राजाओंने मनुष्यहत्या की है।

उसके बाद उसका लड़का बक सिंहासनाखूड हुआ और उसने ६३४ बी. सी. से ५७१ बी. सी. तक ६३ वर्ष राज किया। वह

अपने पिताकी तरह क्रूर और निर्दय न था। वह बड़ा धर्मात्मा और दयालु राजा हुआ। उसने कई मन्दिर बनवाये और गाँव बसाये। पर न मालूम क्यों उसकी मृत्यु एक डाइनके हाथसे हुई। कल्हणके समयमें भी यह बात काश्मीरियोंमें प्रचलित थी। उसके बाद उसीके वंशके क्षितिनन्द, वसुनन्द, द्वितीय नर और अक्ष नामक चार राजे हुए, जिन्होंने ५७१ से ३६९ बी. सी. तक २०२ वर्ष राज्य किया। चूँकि कल्हणने एक ही वाक्यमें इन्हें समाप्त कर दिया है, इसलिए डाक्टर स्टाइनका अनुमान है कि ये अनैतिहासिक व्यक्ति हैं।

अक्षके बाद उसका पुत्र गोपादित्य राजा हुआ, जिसने ३६९ से ३०९ बी. सी. तक ६० वर्ष राज्य किया। कहा जाता है कि, कई प्रसिद्ध स्थानोंमें उसने अग्रहरोंकी स्थापना की थी। लोगोंका यह भी विश्वास है कि, श्रीनगरसे पूर्व दो मीलकी दूरी पर एक पहाड़ी पर शंकराचार्यका जो मन्दिर है, वह इसीका बनाया हुआ है। यह तस्ते सुलेमानके नामसे भी मशहूर है। राजतरंगिणीमें इसे ज्येष्ठेश्वर बतलाया गया है। इसमें आजकल शिवका लिङ्ग है। इस पर्वतको गोपाद्रि भी कहते हैं।

गोपादित्यके पश्चात् उसका पुत्र गोकर्ण राजा हुआ, जिसने ३०९ से २५१ बी. सी. तक ५८ वर्ष राज्य किया। उसके बाद उसके पुत्र खिणखिल नेरन्द्रादित्यको शासनभार मिला।

लोगोंका अनुमान है कि, यही देवशाही खिंगिल है। इसने २९१ से २१९ बी. सी. तक ३६ वर्ष राज्य किया। उसके बाद गोनन्दीय वंशका अन्तिम राजा अन्ध युधिष्ठिर सिंहासनारूढ़ हुआ और उसने २१९ से १८० बी. सी. तक ३९ वर्ष राज्य किया। अपनी छोटी आँखोंके कारण वह अंध कहा जाता था। अपने राज्यकालके प्रथम कई वर्षों तक तो उसने धार्मिक जीवन व्यतीत किया; पीछे इन्द्रियोंके वशीभूत हो उसने प्रजा और मंत्रिवर्ग दोनोंको अप्रसन्न कर दिया। अन्तमें हार मानकर जब मंत्रियोंने इसके दुराचरणमें साथ देना छोड़ दिया, तब इसे भी असहाय हो सिंहासनको तिजांजली दे जंगलमें जाना पड़ा। कल्हण अपने ग्रंथका प्रथम तरंग यहीं समाप्त करता है।

**भ्रमसंशोधन**—पिछले अंकमें प्रमादवशा कुछ अशुद्धियाँ रह गई हैं। पाठकोंको कृपा करके उनका संशोधन इस प्रकार करना चाहिए। ३४८ पृष्ठके दूसरे कालिमकी चौथी लाइनमें १८९४ की जगह ११८२ चाहिए। वास्तवमें १८९४ लौकिक वर्ष है। इसके ६ लाइन और नीचे 'यद्यपि राजतरंगिणीके अनुसार'से लेकर 'संदिग्ध अवश्य है' तकके बदले यह वाक्य होना चाहिए—“राजतरंगिणीके अनुसार यह समय असंभव नहीं है। क्योंकि १३९४ बी. सी. से ११८२ बी. सी. तक अशोक तथा उसके उत्तराधिकारी ६ राजाओंका राज्य करना भी असंभव नहीं कहा जा सकता।” आगे ३४९ पृष्ठपर दूसरे कालिमकी दूसरी लाइनमें १९ वींकी जगह १३ वीं और छठी लाइनमें १८९४ की जगह ११८२ चाहिए। —लेखक।



[ ले०—श्रीयुत विश्वंभरदास गार्गीय । ]

१

जिनधर्मका उपदेश है—“तुम द्वेष करना छोड़ दे। अज्ञानताके जालको, बनसके तैसे तोड़ दे। जात्यादिके मदसे तिरस्कृत, मत किसीको भी करो। संकीर्णताके स्थानमें औदार्यका आदर करो ॥”

२

हैं शूद्र सेवक सदासे, सेवा हमारी कर रहे। वे चाहते न समानता, अज्ञानतामें मर रहे ॥ तो भी न हम समझें उन्हें, वे जानवर हैं या मनुज। हा हन्त! गैर बनें हमारी भूमिके ही ये मनुज।

३

हा! श्वान सम आदर न अब, होता मनुजताके लिए। कैसे हुए हैं सभ्य हम, निजस्वार्थसाधनके लिए। चाहे मरें अनन्यज कुचलकर, किसीकी गाड़ी तले। पर छू सकेंगे हम न उनको, तत्सदृशतनुमें पले ॥

४

यों कर घृणा हम हो गये, संसारमें सबसे गिरे। पर शूद्र 'साहब' बन रहे, हो सदाको हमसे परे ॥ अब पा रहे अधिकार वे, हम हिन्दुओंके सिर चढ़े। हम घट रहे हैं संघबलमें, वे दिनोंदिन हैं बढ़े।

५

चेतो अभी तक ध्यान दो, इनको न ठुकराते रहो। राष्ट्रीयताके मार्गमें, कंटक न बिखराते रहो ॥ समझो इन्हें अपना, सहारा, प्रेमसे देते रहो। आचार और विचार इनके, विशद नित करते रहो।





## सूक्तिमुक्तावली और सोमप्रभाचार्य ।

[ ले०—श्रीयुत मुनि जिनविजयजी । ]

सोमप्रभ नामक आचार्यका बनाया हुआ सूक्तिमुक्तावली नामका १०० पद्योंका एक छोटासा ग्रंथ जैनसमाजमें खूब आदर पा रहा है। इसकी रचना प्रसाद-गुणयुक्त मधुर और बोधप्रद है। इसके प्रत्येक पद्यमें नीति, भक्ति और वैराग्य आदि, विविध प्रकारके सन्मार्गमें प्रवृत्त करनेवाले उपदेशोंका उत्तम संग्रह है। इस पर न जाने कितने विद्वानोंने न जाने कितने टीका-टिप्पण और हिन्दी-गुजराती आदि प्रचलित देशभाषाओंके गद्यपद्यानुवाद लिखे हैं। इस तरह यह आकारमें लघु होने-पर भी गौरवमें एक तात्त्विक या महान् ग्रन्थकी बराबरीका मान पा रहा है। इसके प्रथम पद्यका आदि पद 'सिन्दूरप्रकरः' आदि है, इसलिए इसका दूसरा नाम 'सिन्दूर-प्रकर' भी है। 'सोमशतक' के तीसरे नामसे भी यह प्रचलित है। क्योंकि इसके कर्ताका नाम सोमप्रभ है।

जैनसमाजके श्वेताम्बर और दिगम्बर नामक दोनों ही संप्रदायोंमें इसका आदर और प्रचार है। जिस प्रकार भक्तामर, कल्याणमन्दिर आदि स्तोत्रोंके कर्ताओंको दोनों संप्रदायवाले अपने अपने संप्रदायके प्रभावक-पुरुष मानते हैं, और तत्त्वार्थसूत्रके रचयिता महर्षि उमास्वामी— ( या उमास्वाति )—को

अपने अपने मतानुसार सचेलक या अचेलक—सवस्त्र अथवा निर्वस्त्र—कह कर अपनाते हैं और उनके प्रति बहुमान प्रकट करते हैं, उसी प्रकार सोमप्रभाचार्यको भी श्वेताम्बर अपने आचार्य बतलाते हैं और दिगम्बर अपने और उनकी मुक्तावलीको सांप्रदायिक विरोध-दर्शक उद्गारोंके अभावके कारण निःशङ्क होकर अपने अपने हृदयमें धारण करते हैं। पर वास्तवमें सोमप्रभाचार्य कौन थे—दिगम्बर थे या श्वेताम्बर ?

जो मनुष्य, सांप्रदायिक-मोहके वशीभूत होकर ही सोमप्रभाचार्यकी इस कृतिका आदर करते हैं और केवल धार्मिक पक्षपातके कारण ही इस ग्रंथमें उपयोगिता समझते हैं उन्हें उक्त प्रश्नका उत्तर अवश्य ही अरुचिकर होगा; परंतु जो गुणानुरागी और सत्यके अनुयायी हैं उनपर इसका कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ सकता। गुणग्राही और तत्त्वान्वेषी मनुष्य किसी व्यक्ति या कृतिका जो आदर-सत्कार करते हैं वह पक्षपात या स्वार्थ-साधनकी दृष्टिसे नहीं करते; किन्तु सत्यके स्वरूपको सुष्ठुतया समझनेके लिए उनका आतुर हृदय ही उन्हें वैसा करनेके लिए बाध्य करता है। जो सच्चा जैन है वह तो स्वयं भगवान् महावीरमें भी केवल श्रद्धा या धार्मिक-

विश्वासके वशीभूत होकर अपना प्रेमभाव प्रकट नहीं करता; किन्तु जब उनमें ' यथा-वदासत्त्व ' आदि गुणोंकी बुद्धिपूर्वक सम्यक परीक्षा कर लेता है तब कहीं उन्हें मानता-पूजता है \* । जो व्यक्ति या ग्रंथ सत्यका अनुयायी होकर उसके मार्गपर चलनेका उपदेश करता है, वह चाहे किसी सम्प्रदाय और किसी स्वरूपमें हो, सत्यग्राहक उसे अवश्य अपनायगा । यद्यपि ये उल्लेख प्रस्तुत विषयके साथ कोई सीधा संबंध नहीं रखते; परंतु हमारे समाजके वर्तमान धार्मिक-विचारोंने जो विचित्र वेष पहन लिया है उसे देखकर इस विषयमें दो शब्द लिखनेकी इच्छाका संवरण हम नहीं कर सके । हमारे समाजमें सांप्रदायिक मोह-अन्धश्रद्धा-का इतना प्राबल्य होगया है कि जिससे हम अपने धर्मके मूल-स्वरूपको बहुत कुछ भूल गये हैं । सत्योपदेश श्रीमहावीरके सम्यक् तत्त्वोंपर हमने अपनी सङ्कुचित विचार-शीलताका ऐसा गहरा परदा डाल रक्खा है कि जिससे हम उनके-तत्त्वोंके-सत्यरूपको ठीक ठीक नहीं देख सकते । हमारी बुद्धिको अयोग्य पक्षपात-धार्मिक कदाग्रह-ने इस तरह दबा रक्खा है कि, वह स्वतंत्र विचारपूर्वक अपने आप सत्यासत्य और हेयोपादेयका सम्यग् निर्णय किसी प्रकार कर ही नहीं सकती । हमारे सामने कोई अज्ञात और कृत्रिम ग्रंथ

\* न श्रद्धयैव त्वयि पक्षपातो न द्वेषमात्रादरुचिः परेषु । यथावदासत्त्वपरीक्षया उ त्वामेव वीर ! प्रमु माश्रिताः स्मः ॥ —श्रीहेमचन्द्रसूरिः ।

लाकर रख दिया जाय और कह दिया जाय कि यह अमुक पूर्वाचार्यका बनाया हुआ है, चाहे फिर उसमें कुछ भी तत्त्व न हो-तो हम झट उसका आदरातिथ्य करने लग जायेंगे और किसी प्रकार ' ननु न च ' किये बिना ही अन्यान्य ग्रन्थोंकी तरह उसकी उपादेयता स्वीकार कर लेंगे । इसी प्रकार किसी भिन्न सांप्रदायिक विद्वान्का बनाया हुआ ग्रंथ यदि हमें पसन्द आगया तो हम उसमें कुछ थोड़ासा परिवर्तन कर-आदि-अन्तके श्लोकोंमें नामादिका फेर फार कर-उसे अपने संप्रदायमें ले लेंगे । इस प्रकारके ग्रन्थचौर्यमें हमें कोई दूषण नहीं लगता-प्रत्युत अपने साहित्यमें इस प्रकार एक ग्रन्थकी वृद्धि हुई देख कर हमें आनन्द प्राप्त होता है ! परन्तु यदि उस ग्रन्थके मूलरूपको विकृत न बनाकर, असली रूपमें ही उसका वाचन-श्रवण किया जाय, तो हमारे सम्यक्त्वमें मालिन्य उत्पन्न हो जाता है ! हमारा नाम मिथ्यात्वके पृष्ठ-पोषकोंमें गिना जाता है !! श्वेताम्बर और दिगम्बर-दोनों ही संप्रदायोंमें, इस प्रकारके ग्रन्थचौर्यके अनेक उदाहरण दृष्टिगोचर हो रहे हैं ।

पाठक, आइए, इस विषयान्तरको यहीं छोड़ कर, अब हम मूलविषयकी तरफ दृष्टि डालें और देखें कि सोमप्रभाचार्यको अपने अपने आचार्य बतलानेमें, दोनों संप्रदायोंके पास क्या क्या प्रमाण हैं और वे कैसे हैं ?

पाठक जानते हैं कि, यह ग्रंथ सामान्य और हितकर उपदेश देनेवाला है और इसी लिए दोनों समुदायोंमें एकसा प्रिय हो रहा है। ऐसी दशामें, इसमेंसे ऐसे प्रमाण नहीं मिल सकते कि जिससे इसका संप्रदायत्व निश्चित किया जाय \*। जो कुछ विचार किया जा सकता है वह केवल इसके अन्तिम पद्यपरसे—जिसमें कर्ताने अपना तथा अपने गुरु और दादा—गुरुका नामोल्लेख किया है।

अभजदजितदेवाचार्यपद्मेदयादि—

द्युमणिविजयसिंहाचार्यपादारविन्दे ।

मधुकरसमतां यस्तेन सोमप्रभेण

व्यरचि मुनिपनेत्रा सूक्तिमुक्तावलीयम् ॥

अर्थ स्पष्ट ही है कि, श्रीअजितदेव नामक आचार्यके पदरूप उदयाचल पर सूर्यसमान विजयसिंहसूरि हुए; उनके चरणरूप कमलोंमें भ्रमरकी उपमाको धारण करनेवाले सोम-प्रभाचार्य हुए; जिन्होंने इस सूक्तिमुक्तावलीकी रचना की। पुराने टीकाकारोंने भी यही भावार्थ लिखा है।

जहाँ तक हम खोज कर सके, दिगंबर साहित्य और इतिहासमें इस विषयका जानने लायक कोई उल्लेख नहीं मिला। न किसी पट्टावलीहीमें इन आचार्योंका वृत्तान्त मिला और न किसी ग्रन्थमें ही कोई उल्लेख नजर आया। \* टीका-टिप्पण भी इसपर किसी दिग-

\* हमने लेखके अन्तमें एक ऐसा प्रमाण दिया है कि जिससे मालूम होता है कि यह ग्रन्थ किस सम्प्रदायका है।

—सम्पादक ।

म्बर विद्वान्का बनाया हुआ देखनेमें नहीं आया\*। हाँ, सुप्रसिद्ध कविवर श्रीबनारसीदासजीका किया हुआ इसका पद्यानुवाद अवश्य दिगम्बर-साहित्यकी शोभा बढ़ा रहा है। कविवरजीकी यह कृति बहुत ही उत्तम और प्रशंसनीय है। जितना आनन्द मूल ग्रन्थके पाठसे आता है उतना ही इस अनुवादसे भी। हमारा अनुमान तो यह कहता है कि कविवरजीके इस सुप्रयासने ही दिगम्बरसंप्रदायमें, इस ग्रंथको आदर दिलाया है और तत्पश्चात् ही उक्त समुदायमें इसके पठन पाठनका प्रचार हुआ है। ऐसा न होता तो कविवरजीके पूर्ववर्ती किसी विद्वानकी की हुई कोई टीका टिप्पणी अवश्य उपलब्ध होती; जैसा कि श्वेताम्बर-साहित्यमें देखा जाता है।

हमारे विचारसे इसकी प्रसिद्धि और प्रीतिमें मुख्य कारण उपर्युक्त कविवरजी ही हैं। एक तो दिगम्बर भाइयोंकी यह श्रद्धा है कि दिगम्बर-विद्वान् भिन्न संप्रदायके किसी भी ग्रन्थ पर उसके पोषणार्थ, एक अक्षर भी नहीं लिख सकता; ऐसी दशामें कविवरजीने जब इसका अनुवाद किया है तब यह ग्रन्थ हमारे ही संप्रदायका होना चाहिए और दूसरी बात यह है कि खुद कविवरजीने ही

\* एक संस्कृत टीका अभी हाल ही निपाणी (बेलगाँव) में छपी है, जो किसी दिगम्बर विद्वानकी बनाई हुई है, परन्तु उसमें टीकाकारका नाम नहीं है। इस पुस्तककी समालोचना इसी अंकमें अन्यत्र की गई है।

—सम्पादक ।

इस पर दिगम्बरत्वकी मुहर ( छाप ) लगा दी है। बस इन्हीं दो कारणोंसे यह ग्रन्थ दिगम्बर सम्प्रदायका समझा जाने लगा है। देखिए, कविवरजीकी वह मुहर यह है:—

जैनवंश-सर-हंस दिगम्बर,  
मुनिपति अजितदेव अति आरज ॥  
ताके पट्ट वादिमद-भंजन,  
प्रकटे विजयसेन आचारज ॥  
ताके पट्ट भये सोमप्रभ,  
तिन ये ग्रन्थ कियो हित कारज ।  
जाके पढ़त सुनत अवधारत,  
हैं सुगुरुष जे पुरुष अनारज ॥

—बनारसीविलास पृ० ६८ ।

यह पद्य सूक्तिमुक्तावलीके अन्तिम-पद्य का—जो ऊपर लिखा जा चुका है—भावानुवाद मात्र है। इस लिए जो बात मूलमें है उसीका भाव अनुवादमें आना चाहिए; परंतु इसमें उन्होंने अपनी तरफके चार अक्षर मिला दिये हैं जिससे यह मूलका ठीक ठीक संवाद न देकर एक पक्षका पक्षकार या वकील बन गया है और सोमप्रभ तथा उनके गुरु और दादा गुरु—सबको दिगम्बर बतलाता है। परन्तु इसमें जो दिगम्बर शब्द है उसे कविवरजीने अपनी ओरसे लिखा है। मूलमें यह शब्द या इसका पर्यायवाचक—अथवा भावोद्योतक भी—कोई शब्द नहीं है। इस शब्दको खास इच्छा-पूर्वक प्रयोग करनेमें उनका क्या आशय था सो जानना कठिन है; परंतु कल्पना करने पर दो अस्पष्ट कारण हमें प्रतिभात हुए। एक तो यह कि सूक्तिमुक्तावलीका श्वेताम्बर संप्रदायमें भी विशेष रूपसे

प्रचार देख कर उन्हें इसके कर्ताके विषयमें विशेष जाननेकी इच्छा हुई हो और पूछ-ताछ करने पर सोमप्रभाचार्यके दिगम्बर होनेमें, उन्हें कोई विश्वसनीय—ऐतिहासिक दृष्टिसे नहीं किन्तु सांप्रदायिक दृष्टिसे—बात ज्ञात हुई हो और फिर उसके आधारसे ऐसा स्वाभाविक लिखा गया हो। दूसरा यह कि, कविवरजी जब प्रथम श्वेताम्बर संप्रदायमें थे, तब, उन्हें यह ग्रंथ बहुत प्रियकर लगा हो; और फिर संप्रदायके परिवर्तन करनेका कारण उपस्थित होनेपर, अपने समान इसका भी संप्रदाय बदल देनेकी इच्छासे, उन्होंने इसका अच्छा अनुवाद बनाकर केवल चार अक्षरोंके संमिश्रणसे इसमें, दूसरे संप्रदायमें प्रविष्ट होनेकी शक्तिका संचार कर दिया हो। कुछ भी हो, परंतु यह ग्रन्थ उन्हें था बहुत प्रिय। इसके पाठसे उन्हें अनार्य भी आर्य होते प्रतीत होते थे। अपने इस अनुरागके कारण ही वे इसे दिगम्बर-संप्रदायमें आदर दिला गये।

अब हमें श्वेताम्बर साहित्यकी ओर दृष्टि डालना चाहिए और देखना चाहिए कि वह इस ग्रन्थके विषयमें क्या प्रमाण दे सकता है।

सोमप्रभाचार्य, श्वेताम्बरसंप्रदायकी मुख्य शाखा—जो तपागच्छके नामसे विख्यात है—उसके एक प्रतिष्ठित और पट्टधर आचार्य थे। विक्रमकी १३ वीं शताब्दीके पूर्वार्द्ध पर्यन्त ये विद्यमान थे। सुविख्यात जैनधर्मधारक महाराज कुमारपाल और जगद्विश्रुत आचार्य श्रीहेमचन्द्रजीके समयमें, गुर्जर—राजधानी

अणहिल्लपुरमें, ये बहुत रहा करते थे । कवि-चक्रवर्ती श्रीपाल और प्रसिद्ध धनिक दोहदिकी वसतियोंमें बहुत करके इनकी स्थिति हुआ करती थी । ये अपने समयके एक बड़े भारी विद्वान् और सम्मान्य आचार्य थे । हेम-कुमार-चरित, सुमतिनाथचरित, शृङ्गार-वैराग्य-तरंगिणी, आदि अनेक ग्रन्थोंकी, संस्कृत और प्राकृत भाषामें, इन्होंने रचना की है । इनकी प्रतिभा अलौकिक थी । इन्होंने एक काव्य बनाया है जिसके जुदा जुदा प्रकारके १०० अर्थ किये हैं । इस काव्य—चमत्कृतिसे मुग्ध होकर विद्वानोंने, इन्हें 'शतार्थिक' क्री महती उपाधि प्रदान की थी । इनके पदपर सुप्रसिद्ध श्रीजग-चन्द्रसूरि प्रतिष्ठित हुए थे जिनसे बृहद्गच्छ-का नाम तपागच्छ पड़ा और जो आजतक प्रचलित है ।

तपागच्छके आचार्योंकी पट्ट-परंपराके ९१ वें नम्बर पर मुनिसुन्दरसूरिका नाम है । ये आचार्य भी बड़े भारी विद्वान् और तेजस्वी माने जाते हैं । अध्यात्मकल्पद्रुम और उपदेशरत्नाकर आदि ग्रन्थ इन्हींके बनाये हुए हैं । इन ग्रन्थोंमें 'गुर्वावली' नामका भी ९०० पद्योंका एक ग्रन्थ है । यह ऐतिहासिक होकर रचनामें भी मनोहर है । इसमें श्रमण भगवान् श्रीमहावीरसे लेकर, कर्ताने, अपने समय तकके तपागच्छके आचार्योंका संक्षिप्त परंतु संशोधित इतिहास लिखा है । तपागच्छकी पट्टावलियोंमें यह पट्टावली सबसे पुरानी और प्रामाणिक गिनी

जाती है । विक्रम संवत् १४६६ में इसकी रचना हुई है । अर्थात् सोमप्रभाचार्यके, लगभग २०० वर्ष बाद यह लिखी गई है । इस गुर्वावलीमें सोमप्रभाचार्य तथा उनके गुरु और दादा-गुरुका उसी क्रमसे उल्लेख है जैसा कि सूक्तिमुक्तावलीमें है । देखिए—

अष्ट-ह्येषा ( ११७८ ) मितेऽब्दे,  
विक्रमकालाद्विंवगतो भगवान् ।  
श्रीमुनिचन्द्रमुनीन्द्रो  
ददातु भद्राणि सङ्घाय ॥  
तस्माद्भूदजितदेवगुरुर्गर्गस्थान्  
प्राच्यस्तपःश्रुतनिधिर्जलाधिर्गुणानाम् ।  
श्रीदेवसूरिरपरश्च जगतत्प्रसिद्धो  
वादीश्वरोऽस्तगुणचन्द्रमदोऽपि बाल्ये ॥  
तेष्वादिमाद्विजयसिंहगुरुर्बभासे  
विद्यातपोभिराभितः प्रथमोऽथ तस्मात् ।  
सोमप्रभो मुनिपतिर्विदितः शतार्थी—  
त्यासीद्गणैव मणिरत्नगुरुर्द्वितीयः ॥

अर्थात्—संवत् ११७८ में श्रीमुनि-चन्द्रसूरि स्वर्गको सिधारे । उनके दो प्रधान शिष्य हुए—एक अजितदेवसूरि और दूसरे देवसूरि । अजितदेवके शिष्य विजयसिंहसूरि हुए । उनके दो शिष्य थे जिनमें बड़े सोमप्रभ और छोटे मणिरत्नसूरि थे । यही वृत्तांत अन्य पट्टावलियोंमें तथा ग्रन्थोंमें भी लिखा हुआ है । उदाहरणके लिए, षड्दर्शनसमुच्चयके प्रसिद्ध टीका-कार श्रीगुणरत्नसूरिके क्रियारत्नसमुच्चयकी प्रशस्ति लीजिए—

नित्यं पपौ काञ्जिकमेकमम्भ-  
स्तत्याज सर्वाविकृतीश्च सम्यग् ।

१—जगच्चन्द्रसूरि इन्ही मणिरत्नके शिष्य थे जिनसे तपागच्छ प्रसिद्ध हुआ ।

जिगाय यो भावरिपुंश्च सोऽयं  
 श्लाघ्यो न केषां मुनिचन्द्रसूरिः ॥  
 तस्याभवन्नजितदेवमुनीन्द्रवादि-  
 श्रीदेवसूरिवृषभप्रमुखा विनेयाः ।  
 आद्यादभूद्विजयासिंहगुरुर्गरीयान्  
 निस्सङ्गतादिकगुणैरनिशं वरीयान् ।  
 ततः शतार्थिकः ख्यातः श्रीसोमप्रभसूरिराट् ।  
 सूरिः श्रीमणिरत्नश्च भारत्यास्तनयाविव ॥

ये प्रमाण तो उन अन्य ग्रन्थ-कारोंके हैं जो सोमप्रभाचार्यसे दो सौ वर्ष बाद हुए हैं। परन्तु, अब कुछ उल्लेख स्वयं सोमप्रभाचार्यके दिये जाते हैं जो उनके अन्य ग्रन्थोंमें विद्यमान हैं। ऊपर हमने सोमप्रभाचार्यके किये हुए कुछ ग्रन्थोंके नाम दिये हैं उनमें 'हेम-कुमार-चरित' का नाम है। यह ग्रन्थ बहुत बड़ा है। कोई ७-८ हजार श्लोक प्रमाण है। इसकी रचना कुछ संस्कृत और कुछ प्राकृतमें हैं। महाराज कुमारपाल और आचार्य हेमचन्द्रका इसमें चरित वर्णित है। विक्रम सवत् १२४१ में इसकी समाप्ति हुई है। महाराज सिद्धराज जयसिंहके मानपात्र और भ्रातृतुल्य प्राग्वाट (पोरवाड़) ज्ञातीय कविचक्रवर्ती श्रीश्रीपालके पुत्र सिद्धपाल—जो महाराज कुमारपालके बड़े प्रेमपात्र थे—की 'वसति' में रह कर यह बनाया गया था और स्वयं हेमचन्द्रसूरिके, महेन्द्रमुनि, वर्द्धमान मुनि और गुणचन्द्रमुनि नामके विद्वान् शिष्योंने इसका श्रवण किया था। इस महत्त्ववाले ग्रंथमें, अन्तमें सोमप्रभाचार्यने जो अपनी गुरुप्रशस्ति दी है उसमें भी वही गुरुपरंपरा—वे ही तीनों नाम—क्रमसे मिलते

हैं जो सूक्तिमुक्तावली और गुर्वावली आदिमें मिलते हैं। देखिए—

सूर्याचन्द्रमसौ कुतर्कतमसः कर्णावतंसौ क्षिते-  
 धुर्यौ धर्मेरथस्य सर्वजगतस्तत्त्वावलोके दशौ ।  
 निर्वाणावसथस्य तोरणमहास्तम्भावभूतामुभा-  
 वेकः श्रीमुनिचन्द्रमूरिरपरः श्रीमानदेवप्रसुः ॥  
 तयोर्वभूवाजितदेवमूरिः शिष्यो वृहद् च्छनभःशशाङ्कः ।  
 जिनेन्द्रधर्मीम्बुनिधिःप्रपदे घनोदकः स्फूर्तिमतीव यस्मात्  
 श्रीदेवमूरिप्रमुखा वभुनुरन्येऽपि तत्पादपयोजहंसाः ।  
 येषामवाधा रचितास्थितानां नालीकभैत्री मुदमातताना ॥  
 विशारदशिरोमणेरजितदेवमूरैरभूत्  
 क्रमाम्बुजमधुव्रतो विजयसिंहमूरिः प्रसुः ।  
 मितोपकरणक्रियारुचिरनित्यवासी च य-  
 श्विरन्तनमुनिव्रतं व्यथितदुःखमायामपि ॥  
 तत्पद्मपूर्वाद्रिमहस्वरदिमः सोमप्रभाचार्य इति प्रसिद्धः ।  
 श्रीहेमसूरेश्च कुमारपालदेवस्य चेदं न्यगदच्चरित्रम् ॥

इन श्लोकोंका तात्पर्य पूरेके श्लोकोंके जैसा ही है। ये ही श्लोक, कुछ थोड़ेसे शब्दोंके फेर फारके साथ, 'मुमतिनाथ-चरित' नामक ग्रन्थके अन्तमें भी दिये हुए हैं जो कुमारपालके राजत्व-कालमें लिखा गया था। विजयसिंहसूरिके एक शिष्य— अर्थात् सोमप्रभाचार्यके गुरु-भ्राता—हेमचन्द्र थे। उन्होंने, कोई १२०० श्लोक प्रमाण 'नाभेय-नेमि-द्विसन्धान' नामका गद्यपद्यमय मनोहर काव्य लिखा है जिसका संशोधन उक्त कवि-चक्रवर्ती श्रीश्रीपालने किया है। इसकी प्रशस्तिमें लेखकने जो अपनी गुरुपरंपरा लिखी है वह भी उपरि लिखित प्रशस्तिके समान ही है। पाठकोंके अवलोकनार्थ हम उसे भी यहाँ पर उद्धृत कर देते हैं—

भक्तः श्रीमुनिचन्द्रसूरिसुगुरोः श्रीमानदेवस्य च  
श्रीमान् सोऽजितदेवसूरिरभवत् षट्कर्कदुग्धाम्बुधिः ।  
सद्यः संस्कृतगद्यपद्यलहरीपूरेण यस्याप्रभ-  
क्षिता वादिपरम्परा तृणतुलां धत्तेस्म दूरीकृता ॥

श्रीमानाभूद्विजयसूरिरमुष्य शिष्यो

येन— —स्मरस्य शरान् गृहीत्वा + ।

कृप्तं चतुर्भिरनघं शरयन्त्रमग्रे

विश्वं तदेकविशिखेन वशं च निन्ये ॥

श्रीहेमचन्द्रसूरिर्विभूव शिष्यस्तथापरस्तस्य ।

भवहतये तेन कृतो द्विःसन्धानप्रबन्धोऽयम् ॥

एकाहनिष्पन्नमहाप्रबन्धः श्रीसिद्धराजप्रतिपन्नबन्धुः ।

श्रीपालनामा कविचक्रवर्ती सुधीरिमं शोधितवान् प्रबन्धम्

इन आवतरणों और प्रमाणोंसे विज्ञ-पाठ-  
कोंको निश्चय हो गया होगा कि जो सूक्ति-  
मुक्तावलीके कर्ता हैं वे ही हेमकुमारचरितादिके  
कर्ता हैं । गुर्वावली और क्रियारत्नसमुच्चयमें  
जिनका उल्लेख है वे सोमप्रभ तथा हेमकुमार-  
चरित और सिंदूरप्रकरके कर्ता सोमप्रभ भी  
एक ही हैं—भिन्न नहीं । + ऐसी दशामें  
सोमप्रभाचार्यके श्वेताम्बर होनेमें किसी प्रकार-  
का सन्देह नहीं रहता ।

अब हम अपने वक्तव्यको समाप्त करते  
हुए विज्ञवाचकोंसे एक निवेदन करते हैं कि  
यदि सूक्तिमुक्तावली वास्तविक ही सूक्तियोंकी  
मुक्तावली है तो, चाहे उसके कर्ता दिग्म्बर  
हों चाहे श्वेताम्बर; वह अपने ग्राहकका  
अवश्य ही समान-भावसे कल्याण कर सकती  
है । इसलिए यदि आप गुणग्राहक और सत्यो-

+ यह काव्य कुल अशुद्ध और अपूर्ण है । इसकी  
केवल एक ही प्रति—सो भी बहुत जीर्ण—पाटनके एक  
भाण्डारमें है ।

—लेखक ।

÷ डॉक्टर जी. आर. भाण्डारकरने भी अपनी रिपोर्ट  
यही लिखा है । देखिए—

पासक है तो संप्रदायके मिथ्यामोहमें न फँस  
कर, केवल तत्त्वदृष्टिसे, इसमें रहे हुए गुणोंका  
और गूँथे हुए सत्त्वोंका, विवेकपुरःसर ग्रहण  
और उपासन करें । जीवन—प्रद सुमन्द  
पवनको श्वास द्वारा अपने हृदयमें भरते हुए  
मनुष्य, जिस प्रकार उसके उत्थानस्थानका  
विचार नहीं करते, उसी प्रकार जीवनको उन्नत  
बनानेवाले उत्तम—वचनोंको अपने अन्तःकरणमें  
प्रविष्ट करते समय उनके उद्भव-स्थानका विचार  
भी विचार नहीं करना चाहिए । सत्यके  
स्वरूपका साक्षात्कार करनेवाले तत्त्वज्ञोंका  
जगतके प्रति पवित्र सन्देश है कि—‘बालादपि  
हितं ग्राह्यम्’ । शमस्तु सर्वेषाम् ।

### सम्पादकीय सम्मति—

१ सूक्तिमुक्तावलीमें ‘संघाधिकार’ नामका  
एक चार श्लोकोंका प्रकरण है जिसमें ‘संघ’ की  
प्रशंसा की गई है । यद्यपि दिग्म्बर सम्प्रदा-  
यमें भी चतुर्विध संघकी प्रशंसा यत्र तत्र  
मिलती है; परन्तु वह इस रूपमें इतनी बड़ा  
चढ़ाकर कहीं भी नहीं मिलती जितनी उक्त  
संघाधिकारमें है । संघकी भक्तिसे तीर्थंकरका

“ The Suktamuktavali of Somaprabha-  
charya, ( No. 469 ), may also be mention-  
ed in this connection. Somaprabhacharya  
represents himself to be the pupil of Vi-  
jayasinha who occupied the seat of High-  
priest after Ajitadev; ( K. K.; Appendix  
II ). All these names occur in the success-  
ion list of the pontiffs of the Tapagachcha,  
and Somaprabhacharya seems to have  
lived in the latter part of the twelfth  
century. ( Ind. Ant., Vol. XI, p. 254. ) ”

Report for the Search for Sanskrit Inss  
in the Bombay Presidency ( 1882-1883.  
by Bhandarkar—p. 42.

पद प्राप्त होता है, इन्द्र और चक्रीकी पदवी तो संघके भक्तके लिए न कुछ है, संघकी महिमाका वर्णन वाचस्पतिकी भी वाणी नहीं कर सकती, पवित्रताके कारण संघको 'तीर्थ' या तारनेवाला कहा है, संघको और तो क्या स्वयं तीर्थकरदेव नमस्कार करते हैं, संघ समस्त गुणोंकी खान है, भगवत् संघ अति-शय पूजनीय है, आदि विशेषण उक्त संघाधिकारमें ऐसे हैं जो दिगम्बरसम्प्रदायके अनुयायिके लिए बिलकुल अपरिचित हैं। पर श्वेताम्बर सम्प्रदायमें संघका महत्त्व सच-मुच ही बहुत अधिक वर्णन किया गया है और इससे हमारी समझमें यह ग्रन्थ श्वेताम्बरी ही जँच पड़ता है।

निर्णयसागरप्रेसकी काव्यमालामें जो सूक्तिमुक्तावली छपी है और जो तीन प्राचीन पुस्तकोंके आधारसे संशोधित हुई है, उसमें २२ वें नम्बरके श्लोकका तीसरा चरण इस प्रकार है:—

“यस्मै तीर्थपतिर्नमस्यति सतां यस्माच्छुभं जायते”

अर्थात् “जिस संघको तीर्थकरदेव नमस्कार करते हैं और जिससे सबका कल्याण होता है।” परन्तु दिगम्बर सम्प्रदायमें यह बात मान्य नहीं है कि तीर्थकरदेव संघको नमस्कार करते हैं, इसलिए दिगम्बर अधिकारकी या दिगम्बरोंकी छपाई हुई पुस्तकोंमें ‘तीर्थपति’ की जगह कहीं ‘देवपति’ और कहीं ‘स्वर्गपति’ पाठ मिलता है। यद्यपि साधारण दृष्टिसे स्वर्गपति और देवपति पाठ भी कुछ बुरे नहीं मालूम होते हैं और इनसे

काम चल जाता है, परन्तु यह जाननेकी जरूरत है कि दिगम्बर सम्प्रदायमें कहीं इस बातका भी जिकर है या नहीं कि इन्द्रने संघको नमस्कार किया है। यदि ऐसा न हो तो उक्त पाठपरिवर्तन करना भी निरर्थक होगा।

२ कविवर बनारसीदासजी आध्यात्मिक पुरुष थे। उनकी रचनासे पता लगता है कि वे बहुत ही निष्पक्ष विद्वान् थे। उनमें इस प्रकारके साम्प्रदायिक मोहकी तो संभावना ही नहीं हो सकती है कि वे किसी श्वेताम्बर आचार्यको जानबूझकर दिगम्बर बना दें। या तो उनको स्वयं ऐसा विश्वास होगा कि यह दिगम्बर ग्रन्थ है, या जिस प्रतिपरसे उन्होंने अनुवाद किया होगा, उसकी ही किसी टीका टिप्पणीमें ग्रन्थके दिगम्बर होनेका उल्लेख होगा। बम्बईके तेरह-पंथी मन्दिरमें बासोदेके भंडारसे आई हुई एक सूक्तिमुक्तावली है। इसके १३ पत्र हैं। प्रारंभका एक पत्र नहीं है। इसके अन्तमें लिखा है—“संवत् १६३० वर्षे चैत्र सुदि ८ बुद्धे दिने श्रीमूलसंघे बलात्कारगणे सरस्वतीगच्छे कुंदकुंदाचार्यान्वये अस्मिन् मालवदेशे आचार्य पद्मनन्दिदेव तत्पट्टे आचार्य श्रीयशकीर्तिदेव तत् सिष्य ब्रह्म आसेसा इदं लिखितं। श्रेयस्तु कल्याणमस्तु। श्री। छ।” इससे मालूम होता है कि संवत् १६३० में यशकीर्ति भट्टारकके शिष्य आसेसा ब्रह्मचारीने इसे लिखा था। इसमें



सूक्तिमुक्तावलीकी जो प्रशस्ति है, वह बहुत ही विलक्षण है । देखिए:—

अभजदजितविद्यो वादिवादीन्द्रवज्रो  
वृपतिविबुधवन्द्यो गौरसेनांप्रिकंजे ।  
मधुकरसमतां यः सोमदेवेन तेन  
व्यरचि मुनिपराज्ञा सूक्तिमुक्तावलीयम् ॥

इत्याचार्य सोमदेवविरचितं सूक्तिमुक्तावली शास्त्र समाप्त ।

डा० भाण्डारकरने अपनी सन १८८२-८३ की संस्कृत पुस्तकोंकी रिपोर्टमें सूक्तिमुक्तावलीकी जो दो प्रतियाँ लिखी हैं उनमेंकी भी एक प्रतिमें यही पद्य लिखा है । यह पद्य सूक्तिमुक्तावलीका वह अन्तिम पद्य परिवर्तित करके गढ़ा गया है जिसमें अजितदेव, विजयसिंह और ग्रन्थकर्ता सोमप्रभाचार्यका स्पष्ट वर्णन है । साफ मालूम होता है कि यह किसी सम्प्रदायमोहमुग्ध महात्माकी कारीगरी है । मालूम नहीं कौनसे गौरसेनेशिष्य सोमदेवकी रूपाति बढ़ानेके लिए यह प्रयत्न किया गया है । अस्तु । इससे हम सिर्फ यह बतलाना चाहते हैं कि वि० संवत् १६३२ में भी—जब बनारसीदासजीका जन्म भी नहीं हुआ था—सूक्तिमुक्तावलीको दिगम्बर ग्रन्थ बनानेका प्रयत्न हो चुका था, तब यदि बनारसीदासजीके हाथमें भी कोई ऐसी प्रति आई हो जिसमें सोमप्रभको दिगम्बर लिखा हो तो कुछ आश्चर्य नहीं है ।

इस तरह हमें भी यह ग्रन्थ एक श्वेताम्बराचार्यका बनाया हुआ ही प्रतीत होता है । पर यदि किसी सज्जनका ऐसा खयाल हो कि—नहीं, यह दिगम्बरसम्प्रदायका ही ग्रन्थ है, तो उन्हें इस विषयके प्रमाण लिखकर भेजना चाहिए । वे बड़ी खुशीसे प्रकाशित कर दिये जायँगे ।

माताका पुत्रको जगाना ।

( ले०—श्रीयुत पं० रामचरित उपाध्याय । )

( १ )

नभोऽङ्कमें तारक-वृन्द खोगया,  
निशेश भी तेज-विहीन होगया ।  
मनोहरा मोदमयी हुई दिशा,  
उठो उठो पुत्र ! रही नहीं निशा ॥

( २ )

ललाम है पूर्वदिशाऽऽस्य-लालिमा,  
परन्तु है पश्चिम-भाग-कालिमा ।  
विलोकिए कोतुक है बड़ा भला,  
उठो उठो पुत्र ! प्रभात हो चला ॥

( ३ )

दिनेश आना अब चाहता यहाँ,  
सरोज-संघात विकाश पा रहा ।  
उठो उठो पुत्र ! तमोऽवसान है,  
प्रमाद-सेवा दुःखका निधान है ॥

( ४ )

न चन्द्रमा नष्ट हुआ समग्र है,  
तमोनिहन्ता दिननाथ व्यग्र है ।  
यही घड़ी है सुख-सिद्धिके लिए,  
उठो उठो पुत्र ! सुवृद्धिके लिए ॥

( ५ )

शशी कलंकी गिरता न क्यों कहे ?  
घमण्डियोंका अवसान क्यों न हो ?  
इसी लिए आज जगा रही तुम्हें,  
स्वधर्ममें पुत्र ! लगा रही तुम्हें ॥

( ६ )

निशान्तके साथ निशेश भी चला,  
मनो महीके सिरसे टली बला ।  
दिखा रही है वह क्या छटा भली,  
उठो उठो पुत्र ! मधुव्रतावली ॥

( ७ )

द्विरेफ गाके जगको जगा रहे,  
सुकर्ममें हैं सबको लगा रहे ।  
न च्चकिए पुत्र ! परार्थके लिए  
स्वबन्धुओंको उठिए उठाइए ॥

( ८ )

दिखा रहा है शिशु सूर्यधामको,  
मिटा रहा है तम-शत्रु नामको ।  
विलोलता है जगमें बड़ी कड़ी,  
चली गई पुत्र ! विरामकी घड़ी ॥

( ९ )

स्व-वंशका ज्ञान जिधे बना रहे,  
भला कभी क्यों वह दुःखको सहे ।  
न भूल जाना तुम आर्यवंश हो,  
जगो दुलारे ! जगदीश-वंश हो

( १० )

मिली हुई भी उसकी न है रमा,  
जिसे प्रिया है रिपुके लिए क्षमा, ।  
शशी इसीसे सब भौंति हीन है,  
सुखासि बेटा ! बलके अधीन है ॥

( ११ )

मनुष्य जो व्यर्थ प्रमाद-लिस है,  
स्वद्विहीमें अथवा सुतृप्त है ।  
कभी गिरेगा वह सोमसा सही,  
सुनो, उठो पुत्र ! विधेय है यही ॥

( १२ )

विवेकसे विक्रमसे विहीन हो,  
अधर्मके आलसके अधीन हो ।  
विनष्ट जो हैं उनसे न बोलिए,  
सुना न ? हे पुत्र ! दगाब्ज खोलिए ॥

( १८ )

जिसे सिखाते तुम थे, तुम्हें वही-  
सिखा रही है, पर होश है नहीं ।  
उठो दिखा दो निज तेज तो सही,  
सुकार्यका पुत्र ! मुहूर्त है यही ॥

( १३ )

स्वगेहहीमें नर जो न तुष्ट हो,  
कभी विधाता उससे न रुष्ट हो ।  
पढ़े हुए हो किसके विचारमें ?  
उठो, लगो पुत्र ! परोपकारमें ॥

( १४ )

अभिन्न है प्राक्तन कर्म भाग्यसे,  
छिपी नहीं है यह बात प्राज्ञसे ।  
स्वदेश-सेवाव्रतसे न नहीं भगो,  
उठो उठो पुत्र ! सुकर्ममें लगो ॥

( १५ )

चलागया जो क्षण आपका अभी,  
नहीं मिलेगा वह स्वप्नमें कभी ।  
स्वधर्मके ऊपर ध्यान दीजिए,  
विनिद्र हो पुत्र ! न देर काजिए ॥

( १६ )

नरेश होवे अथवा सुरेश हो,  
निरुधमी जो धन-आकरेश हो ।  
निपात होगा उसका अवश्य ही,  
उठो उठो आँख खुली अभी नहीं ॥

( १७ )

प्रभावशाली कुलके मराल हो,  
स्ववंश-कल्पद्रुप-आलवाल हो ।  
करो जरा पुत्र ! स्ववंश नामको,  
उठो सँभालो निजकाम धामको ॥



## सार्वजनिक धनकी जिम्मेवारी ।

स्वं दातुं सुमहच्छक्यं दुःखमन्यस्य पालनम् ।  
 दानं वा पालनं वेति दानाच्छ्रेयोऽनुपालनम् ॥ +  
 मनुष्य, जिन बातोंसे उसका केवल नि-  
 जका ही सम्बन्ध है उनमें चाहे जितना  
 प्रमाद आलस्य आदि कर सकता है और  
 उसके लिए उसको क्षमा भी मिल सकती  
 है; पर पराये कामोंके लिए—उन कामोंके  
 लिए जिनसे कि दूसरोंका—सर्वसाधारणका  
 सम्बन्ध है—वह इतना स्वतन्त्र नहीं है ।  
 सार्वजनिक बातोंमें उसका जरासा भी प्रमाद  
 अक्षम्य है । ऐसे काम उसे बड़ी सावधानीसे  
 करना चाहिए ।

आज हम और और सार्वजनिक कामोंको  
 छोड़कर केवल सार्वजनिक द्रव्यके या पब्लि-  
 कके चन्देके सम्बन्धमें कुछ कहना चाहते  
 हैं । हम देखते हैं कि आजकल सार्वजनिक  
 कामोंके लिए—विद्यालय, आश्रम, पुस्तकालय,  
 औषधालय, अनाथालय, मन्दिर, तीर्थ,  
 पुस्तकप्रकाश, आदि सर्वोपयोगी कामोंके लिए  
 जगह जगह चन्दा होता है, पर बहुत कम  
 चन्दा करनेवाले ऐसे हैं जो इस चन्देके धनकी  
 बड़ी भारी जिम्मेवारीको या उत्तरदायित्वको  
 समझते हों । यद्यपि गवर्नमेंटने सार्वजनिक

+ धन देना बहुत ही कठिन काम है और दूसरेके  
 दिये हुएका पालन करना उससे भी कठिन है । दान  
 करना और दूसरेके दिये हुएकी रक्षा करना, इनमें  
 दानकी अपेक्षा रक्षा करना अधिक पुण्यका कार्य है ।

चन्दोंकी रक्षाके लिए और उनका दुरुपयोग  
 न होने पावे इसके लिए बड़े बड़े कड़े कानू-  
 न बना रखे हैं; परन्तु उनका उपयोग  
 बहुत ही कम होनेपाता है, इस लिए लोग  
 अपने इस उतरदायित्वको समझनेकी परवा  
 भी बहुत ही कम करते हैं ।

पर अब इस उत्तरदायित्वके महत्त्वको  
 समझ लेनेकी बहुत बड़ी आवश्यकता है ।  
 सार्वजनिक संस्थायें खोलनेकी ओर हमारी  
 प्रवृत्ति दिन पर दिन बढ़ती जाती है और  
 हमारी उन्नतिके—प्रगतिके—लिए इस प्रवृ-  
 त्तिका बढ़ना है भी बहुत आवश्यक; परन्तु  
 यह बढ़ना तभी टिक सकता है, जब संस्था-  
 ओंके चलानेवाले अपनी पब्लिकके चन्देकी  
 जिम्मेवारीको अच्छी तरह समझकर काम  
 करें । यदि ऐसा न होगा, लोग अपनी  
 जिम्मेवारियोंको न समझेंगे तो लोगोंको अवि-  
 श्वास हो जायगा और तब लोग प्रयत्न करने  
 पर भी—आवश्यकता समझनेपर भी—चन्दा  
 देनेको हाथ न बढायेंगे ।

‘धनं वै प्राणाः ।’ विचारशीलोंने धनको  
 एक प्राण बतलाया है । संस्थाओंके चलाने-  
 वालोंको जानना चाहिए कि आप लोगोंके  
 हाथमें जब लोग अपने प्राणतुल्य धनको  
 देते हैं, तब वे अपने उन प्राणोंकी भली  
 भाँति रक्षा होनेकी भी आपसे आशा रखते

हैं। आपको केवल वे ही लोग चन्दा नहीं देते हैं जिनके यहाँ लाखों और करोड़ोंका धन है; किन्तु वे भी देते हैं जो साधारण स्थितिके हैं और जो बड़ी कठिनाईसे अपना निर्वाह करते हैं। उनके एक रुपये और एक आनेका मूल्य भी बहुत बड़ा है—प्राणोंसे वह सचमुच ही कम नहीं है। अतः उनके उस धनकी रक्षा प्राणोंकी रक्षाके ही समान बहुत सावधानीसे करना चाहिए। इसमें जरासा भी प्रमाद करना मानों प्राणघात करना है।

अपने—स्वोपार्जित या अपने बापदादोंके धनको खर्च करनेमें आप जिस तरह स्वतंत्र हैं, उस तरह सार्वजनिक धनको खर्च करनेमें नहीं; इस धनकी जिम्मेवारी बहुत बड़ी है। उस धनके मालिक आप स्वयं हैं; परन्तु इस सार्वजनिक धनके, जिन्होंने वह धन दिया है वे, और जिनके लाभके लिए वह दिया गया है वे भी, मालिक हैं। अतः इसका खर्च आप केवल इच्छामात्रसे नहीं, किन्तु सबकी रायका और सबके लाभका खयाल रखकर कर सकते हैं। यदि आप ऐसा नहीं करते तो अन्याय करते हैं और लोगोंको सार्वजनिक कार्योंमें धन न देनेके लिए मानों परोक्षरूपसे उपदेश देते हैं। आपकी इच्छा ही यदि सर्व प्रधान हो जायगी, तो लोग अपना कष्टलब्ध धन आप जैसे लोगोंके हाथमें क्यों देंगे ?

देवद्वयके भोगनेमें पाप क्यों बतलाया गया है ? 'देवत्वं तु विषं घोरं न विषं विषमुच्यते' आदि वाक्योंमें देवधनको विषसे

बढ़कर क्यों बतलाया है ? पण्डितजन इसका चाहे जो कारण बतलावें, वे अदत्तादान आदिकी सूक्ष्म कल्पना करके इसकी तलीमें भले ही चोरीके पापको टटोलें; परन्तु हमारी मोटी समझके अनुसार तो इसके मूलमें यही सार्वजनिक धनकी जिम्मेवारीका महत्त्व छुपा हुआ है। जो धन एक मन्दिरको इसलिए अर्पण किया गया है कि उससे हजारों अन्यजन अपनी भक्तिभावनाको चरितार्थ करके पुण्य उपार्जन करें, उसे यदि कोई हजम कर जाय, तो कहना होगा कि उसने सर्व साधारणके एक पुण्यद्वारको बन्द कर दिया और सबके हितका घात करना यह चोरीकी अपेक्षा भी बहुत बड़ा पाप है। मन्दिरके ही समान विद्यालय, पुस्तकालय, तीर्थक्षेत्र आदि संस्थाओंका भी धन है, अर्थात् यह भी एक प्रकारका देवद्रव्य है। सेवाधर्ममें जनता भी एक देव है, अतएव इस दृष्टिसे भी उसकी सेवाके धनको देवधन कह सकते हैं। उसके धनके हरणमें और दुरुपयोग आदिके करनेमें पाप अवश्य है और वह बहुत बड़ा पाप है।

जिन लोगोंको सार्वजनिक धनके व्यय करनेका अधिकार दिया गया है, उनका कर्तव्य केवल यही नहीं है कि वर्षभरमें एक बार आमदनी और खर्चका हिसाब प्रकाशित कर दिया और छुट्टी पा ली। ( यद्यपि बहुत लोग यह भी समय पर नहीं करते हैं, और कोई तो करते ही नहीं हैं। ) उनका यह भी कर्तव्य है कि वे जो कुछ खर्च करें, वह ऐसी किफायतशारीसे करें कि उससे कम

खर्चमें किसी तरह काम हो ही नहीं सकता हो । मितव्ययता या किफायतशारीके सूत्रोंकी ओर उसका पूरा पूरा ध्यान होना चाहिए । पर हम अपनी वर्तमान संस्थाओंमें ऐसा बहुत ही कम देखते हैं । कहीं कहीं तो अंधाधुंध खर्च किया जाता है । दो तीन वर्ष पहले काशीस्याद्वादपाठशालाका वार्षिकोत्सव किया गया था जिसमें उसके शौकीन संचालकोंने सिर्फ ४०० रुपयोंकी स्वीकारता होनेपर भी ढाई तीन हजार रुपये केवल ऊपरी टाटवाटमें ही स्वाहा कर दिये थे । एक और संस्थाके संचालकने अपने पढ़नेके लिए एक अध्यापकको रख छोड़ा था जिसे ६०) रुपया मासिक वेतन दिया जाता था और वे यह लगभग ७००-८०० रुपया सालका भारी बोझा कई वर्षतक संस्थाके ही सिरपर डाले रहे थे । अभी थोड़े ही दिन पहले हमने एक ऐसी संस्थाकी रिपोर्ट देखी थी जिसकी आर्थिक स्थिति बहुत ही मामूली है, पर उसकी कई फार्मोंकी रिपोर्टें कीमती आर्ट पेपर पर छपी हुई थी ! वास्तवमें कामकी ओर अधिक ध्यान दिया जाना चाहिए, नामकी या दिखावटकी ओर कम, पर हमारे यहाँ दिखाऊपन दिन पर दिन बढ़ता जाता है । यह हम मानते हैं कि कभी कभी लोगोंका चित्त आकर्षित करनेके लिए मितव्ययताके सूत्रोंकी पूरी पूरी पालना नहीं हो सकती है; परन्तु यह निश्चित है कि यदि पूरी पूरी पालना की जायगी तो उसकी ओर लोगोंका चित्त और भी अधिक आकर्षित होगा ।

सार्वजनिक संस्थाओंके संचालक हमारे समाजमें दो प्रकारके हैं—एक तो वे जो सर्वसम्मतिसे नियत किये गये हैं और थोड़ा बहुत स्वार्थत्याग करके इन कर्तव्योंको करते हैं और दूसरे वे जिन्होंने स्वयं बड़ी बड़ी रकमें देकर संस्थाओंको स्थापित किया है । हमारी समझमें इन दोनोंको ही एकसा मितव्ययी होना चाहिए । लखपती और करोड़पती सेठ अपने निजके कामोंमें चाहे जितने अमितव्ययी या फिजूलखर्च हों, उससे सर्व साधारणका कोई विशेष सम्बन्ध नहीं; पर उनकी स्थापित की हुई संस्थाओंमें यदि उनके द्वारा फिजूल खर्च होगा, तो वह अन्याय होगा । क्योंकि वास्तवमें उस संस्था पर उनका उतना ही अधिकार है जितना और सबका है; क्योंकि वह सबकी चीज बना दी गई है । यह बात दूसरी है कि उनसे कोई कुछ कह न सके; पर न कह सकनेसे उनका अन्याय न्याय नहीं कहा जायगा ।

दानवीर सेठ हुकमचन्दजीकी इन्दौरकी संस्थाओंकी इमारतोंको देखकर यह खयाल आये बिना नहीं रहता कि यदि सेठजीको सार्वजनिक द्रव्यके उतरदायित्वका खयाल होता, यदि वे इस कार्यमें मितव्ययतासे काम लेते, तो उनकी संस्थाओंसे जितने लोगोंको लाभ पहुँच रहा है उससे दूने लोगोंको पहुँचता । अवश्य ही इमारतें इतनी शानदार न बनतीं और दूरसे देखनेवालों पर सेठजीके दानका इतना अधिक प्रभाव न पड़ता; परन्तु काम निस्सन्देह अधिक होता । पर अभी कामकी

तरफ लक्ष्य ही कहाँ है ? यदि कामकी तरफ लक्ष्य होता तो उदासीनोंके—विरक्त लोगोंके रहनेके लिए—तक्कूगंजमें १०—१२ हजार रुपयोंकी पक्की इमारत न बनवाई जाती, मामूली झोंपड़ियोंसे ही आश्रमका काम निकाल लिया जाता ।

दूसरे प्रकारके संचालकोंमें भी बहुत कम लोग ऐसे हैं जो अपने उत्तरदायित्वको समझते हों। उनमें भी जो आनरेरी अवैतनिक काम करनेवाले हैं वे तो संस्थाओंके सर्वशक्तिमान् विधाता ही बन जाते हैं। उन्हें इस बातका खयाल ही नहीं रहता कि स्वार्थत्यागीका महत्त्व 'स्वामी' बननेमें नहीं किन्तु 'सेवक' बननेमें है। यदि तुम स्वामी बन गये, तो तुमने अपने स्वार्थत्यागका बदला पा लिया—वेतन वसूल कर लिया—इससे अधिक और क्या चाहते हो ? वास्तवमें तुम्हारी शोभा इसीमें है कि अपने मान सम्मानकी अपेक्षा संस्थाके लाभ हानिकी ओर अधिक ध्यान रखते और सर्व सम्मतिके बिना कोई भी काम मत करो। हम ऐसे कई आनरेरी कार्यकर्ताओंको जानते हैं कि यदि संस्थायें उनके बदले वैतनिक कर्मचारी रखकर काम चलातीं, तो उनके वेतन देकर भी वे अधिक लाभमें रहतीं—उनके अन्धाधुन्ध खर्चोंसे बची रहतीं ।

जैनसमाज बहुत अज्ञान है। उसमें ऐसे ही दानी अधिक हैं जो 'दे देने' में ही पुण्य समझते हैं। इस ओर उनका बहुत ही

कम ध्यान जाता है कि हम जो देते हैं, उसका सदुपयोग भी होता है या नहीं। सार्वजनिक संस्थाओंके संचालकोंकी शिथिलताका यह भी एक बड़ा भारी कारण है। उनके ऊपर जनताका या लोकमतका उतना अंकुश नहीं रहता जितना कि रहना चाहिए। यदि जनता अपने धनके सदुपयोगका भी खयाल रखने लगे, जहाँ सदुपयोग न होता हो, वहाँ एक पाई भी न देवे तो बहुतसी संस्थायें सुधर जायँ, उनकी अन्धाधुन्धी आपसे आप कम हो जाय। ऐसे अनेक तीर्थक्षेत्र हैं जहाँके द्रव्यका कुछ पता नहीं है कि कहाँ गया और कहाँ जाता है, तो भी दाता लोग दिये ही जाते हैं—उन्हें अपने पुण्यसम्पादनमें शंका ही नहीं होती ।

लोकमतका प्रभाव कम रहनेसे संस्थाओंके संचालक मस्त सोया करते हैं। उन्हें अपनी जिम्मेवारीका खयाल आवे ही क्यों, जब कोई पूछनेवाला ही नहीं है ? स्वर्गीय बाबू देवकुमारजीका सिद्धान्तभवन सार्वजनिक संस्था है। उसके लिए वे जो कुछ दे गये हैं वह सार्वजनिक धन हो गया है और लोगोंने उसमें जो थोड़ा बहुत धन दिया है वह भी सार्वजनिक है। परंतु आज ६—७ वर्षसे न तो उसकी कोई रिपोर्ट ही निकलती है और न कोई काम ही होता है। जैनसिद्धांतभास्कर निकलता था सो वह भी बन्द होगया। लोगोंको यह भी मालूम नहीं हुआ कि भास्करमें जो लगभग दो ढाई हजार रुपयाका घाटा रहा है, वह भवनसे

दिया गया है या सम्पादक महाशयने अपनी गाँठसे लगाया है। वंगीय सार्वधर्मपरिषत्-का काम बन्द हुए कई वर्ष हो गये, पर उसके मंत्री कुमार देवेन्द्रप्रसादजीने अब तक भी उसका हिसाब प्रकाशित नहीं किया। कितने रुपये एकट्टे हुए थे और कितने खर्च किये गये, कुछ पता नहीं। सुनते हैं, सेठ नाथारंगजीने अपनी सहायताके रुपयोंके विषयमें बहुत कुछ लिखा पढ़ी की, पर फल कुछ भी नहीं हुआ। तीर्थक्षेत्र-कमेटीके महामंत्री लाला प्रभुदयालजीने बाहु-बलि स्वामीकी तम्बीरोंका बेचना बन्द कर दिया जाय, इसके लिए दो तीन वर्ष पहले जैनमित्रमें 'भयंकर' आन्दोलन उठाया था और सुनते हैं कि लगभग ८००-९०० रुपयेका चन्दा एकट्टा किया था; परंतु उसका भी हिसाब अब तक प्रकाशित न किया गया। लोगोंको यह भी मालूम न हुआ कि जब कोई मुकद्दमा वगैरह नहीं चलाया गया, तब केवल पत्रव्यवहारमें या नोटिसबाजीमें ही इतना रुपया कैसे खर्च हो गया। इस तरहके और भी अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं; जिनसे मालूम होता है कि सार्वजनिक या लोकमतके प्रभावके विना संचालकगण सुस्त हो जाते हैं और वे अपना उत्तरदायित्व भूल जाते हैं।

कोई कोई संचालक लोकमतकी पर-वा ही नहीं करते हैं। यदि कोई उनसे हिसाब किताब या ऐसी ही कोई बात पूछता है, तो वे अपना अपमान समझते हैं और

लाल पीले हो जाते हैं। वे यह नहीं समझते कि यह सेवाधर्म—समाज या धर्मकी सेवा करना—कितना कठिन व्रत है। इसका पालन वही कर सकता है जो अपने मान अपमानको-भी समाजको लिए उत्सर्ग कर देता है। अभी जातिप्रबोधकमें बाबू दयाचन्द्रजीने तीर्थक्षेत्र कमेटीके सबंधमें एक नोट लिखा था कि "तीर्थक्षेत्रकमेटीमें इस समय ५००-६०० रुपया रोज खर्च हो रहा है, उसकी बाका-यदा रिपोर्ट प्रकाशित की जानी चाहिए। जिस तरह जैनमित्रके हर एक अंकमें दाताओंके दानकी रकमें छपती हैं, उसी तरह खर्चकी रकमें भी छपनी चाहिए। हिसाब नहीं छपनेसे यदि हम यह कहें कि रुपयेका दुरुयोग किया जा रहा है तो कुछ अनुचित नहीं होगा। हम पिछले अंकमें चेता चुके हैं और इस बार भी कमेटीको सूचित करते हैं कि यदि वह हिसाब प्रकाशित न करे, तो जातिसे रुपया माँगना छोड़ दे। भोल भाले भाइयोंको धोखेमें रखना और उन्हें क्या हो रहा है, इसकी कुछ भी सूचना न देना, धर्मकी आड़में भारी अन्याय करना है। यदि इस पर भी कुछ ध्यान न दिया गया तो अगले अंकमें हम इस बातका आन्दोलन करेंगे कि एक पैसा भी कोई भाई न दे।" इस नोटको पढ़कर तीर्थक्षेत्रकमेटीके महामंत्री लाला प्रभुदयालजीका मिजाज गर्म हो गया। इसके उत्तरमें उन्होंने जो कुछ लिखा था अच्छा होता यदि वह उसी रूपमें प्रकाशित हो जाता, लोग समझ लेते कि ये सार्वजनिक

काम करनेवाले महात्मा जनताके अधिकारोंपर किस तरह निष्ठुर आक्रमण करते हैं; परन्तु ब्रह्मचारीजीकी कृपासे वह न छपा और उसके बदलेमें लालाजीको आसोज सुदी २ के जैनमित्रमें छपी हुई कुछ थोड़ीसी ठंडी पंक्तियोंसे ही संतोष करना पड़ा। पर उनमें भी आपकी गर्मीकी झलक आ ही गई है। आपने लिखा है “....उन्होंने अपनी योग्य-तानुसार जो चाहे भला बुरा लिखा है।.... लेखमें इतनी असभ्यताका वर्ताव एक बी. ए. महाशयके द्वारा होना और चलते मुकद्दमेमें समाजका अपने धर्मकी रक्षाके लिए तत्पर रह उपाय न करने और द्रव्य सहायता न करनेको झूठी बातों द्वारा भड़काना उनको कहाँतक योग्य है, यह वे स्वयं विचार देखें।” मालूम नहीं, लालाजी ‘भला बुरा’ किसको कहते हैं और ‘असभ्यता’ की परिभाषा क्या है। लालाजीकी समझमें बी. ए. महाशयकी यह धृष्टता हो सकती है, गुस्ताखी हो सकती है और ग़लती भी हो सकती है; पर यह समझमें नहीं आया कि ‘असभ्यता’ कैसे हो सकती है? यदि रुपयोंका हिसाब प्रकाशित करनेके लिए सूचना करना और उसके प्रकाशित न करनेपर इस बातका आन्दोलन करनेकी इच्छा प्रकट करना कि लोग तीर्थक्षेत्रकमेटीको एक पाई भी न दें, असभ्यता है, तब तो लालाजीके हिसाबसे सभ्यताकी व्याख्या बहुत ही विलक्षण होगी। जो लोग आँख बन्द करके रुपया देते जाते हैं और यह जाननेकी आवश्यकता नहीं

समझते कि हमारे दिये हुए रुपयोंका सदुपयोग हो रहा है या दुरुपयोग, वे अभीतक ‘भोले’ कहे जाते थे, पर अब लालाजीकी व्याख्याके अनुसार ‘सभ्य’ कहे जायँगे! यदि लोग इस नई कल्पनाकी हुई सभ्यताके लोभसे सार्वजनिक कार्यकर्त्ताओंके एकहत्थी शासनको और भी उच्छृंखल कर दें, तो अच्छा है; लालाजीकी आत्माको अवश्य ही इससे सन्तोष होगा।

यह बात सच है कि इस समय— मुकद्दमोंके खर्चके लिए चन्देकी आवश्यकताके समय— जातिप्रबोधकके उक्त नोटसे हानि पहुँच सकती है, लोगोंको भ्रम हो सकता है कि हमारे रुपयोंका सदुपयोग नहीं हो रहा है; इसलिए वे चन्दा देनेसे इंकार कर सकते हैं; परन्तु इसमें जातिप्रबोधकका तो कोई दोष दिखलाई नहीं देता। उसने अपने पिछले अंकमें— एक महीने पहले निकले हुए जुलाईके अंकमें—लिखा था कि तीर्थक्षेत्रकमेटीको जबतक मुकद्दमा चलता रहे, अपना हिसाब प्रत्येक जैनमित्रमें प्रकाशित करते रहना चाहिए। पर जब उसके लिखनेपर कुछ भी ध्यान नहीं दिया गया, लालाजीने पब्लिकके रुपयोंके खर्चका हिसाब प्रकाशित करना अपनी शानके खिलाफ समझा, तब जातिप्रबोधकको उक्त दूसरा नोट लिखना पड़ा और उसमें सूचित करना पड़ा कि यदि हिसाब प्रकाशित न होगा तो हम चन्दा देनेके विरुद्ध आन्दोलन करेंगे। हमारी समझमें नहीं आता कि इसमें बाबू दयाचन्दजीने



क्या अन्याय किया और क्या बुराभला कहा, जिससे वे असम्य ठहराये गये । यदि उनके लेखका परिणाम लालाजीके मुकद्दमेके या चन्देके लिए बुरा होता था, तो उन्हें शीघ्र ही हिसाब प्रकाशित करनेकी व्यवस्था करनी थी। अथवा यह प्रकट करना था कि इस कारणसे हिसाब प्रकाशित नहीं हो सकता है । सो न करके एक जातिकी सेवा करनेवालेको असम्य बतलाना, साफ बतला रहा है कि लालाजी अपने उत्तरदायित्वको नहीं समझते हैं । उन्हें यह खयाल ही नहीं है कि हम जैनसमाजके सेवक हैं, न कि स्वेच्छाचारी स्वामी ।

शिखरजीका यह मुकद्दमा कोई ७-८ महीनेसे चल रहा है । इसमें लगभग ७०-८० हजार रुपये खर्च हुए बतलाये जाते हैं । ऐसी अवस्थामें कमेटीपर समाजका चाहे जितना अधिक विश्वास हो, कमेटीका क्या यह कर्तव्य नहीं है कि वह स्वयं अपने उक्त विश्वासको स्थिर रखनेके लिए जनसाधारणके सम्मुख नियमित रूपसे हिसाब प्रकाशित करती जाय ? यह कोई ऐसा काम नहीं था जो समय पर तयार न हो सके । यदि यह कहा जाय कि बहुतसे खर्च ऐसे किये जाते हैं कि जिनके प्रकाशित होनेसे मुकद्दमा बिगड़ सकता है, या प्रतिपक्षियोंको लाभ पहुँच सकता है, तो कमसे कम इतना तो हो सकता था कि कमेटीके मेम्बरोके पास ही साप्ताहिक या मासिक हिसाब भेजा जाता, पर सुनते हैं कि ऐसा भी नहीं होता । कमेटीके सारे मेम्बरोको यह भी मालूम नहीं है कि क्या खर्च हो रहा है और किस तरह हो रहा है । यह शिकायत

अनेक लोगोंके मुँहसे सुनी गई है कि खर्च अन्धाधुन्ध हो रहा है । ऐसी दशामें बाबू दयाचन्द्रजीने यदि एक नोट सचेत करनेके लिए लिख दिया तो कोई अन्याय नहीं किया । जनसाधारणके स्वत्वोंकी रक्षाके लिए प्रत्येक व्यक्तिको इस तरह लिखनेका अधिकार है । तीर्थक्षेत्रकमेटीके संचालक यदि लोगोंकी ऐसी सूचनाओंका आदर नहीं करते हैं, उल्टा उन्हें झिड़कते हैं, तो वे अन्याय करते हैं और सार्वजनिक संस्थाओंके महत्त्वको गिराते हैं ।

संस्थाओंका धन केवल किफायतशारीसे ही खर्च न किया जाना चाहिए, किन्तु ईमानदारी भी उसके साथ रहनी चाहिए । एक तो लोगोंसे जो धन जिस कामके लिए लिया जाय, वह उसी काममें खर्च किया जाना चाहिए । यदि कभी दूसरे काममें खर्च करनेकी आवश्यकता आन पड़े, तो दाताओंसे उस काममें खर्च करनेकी अनुमति ले लेनी चाहिए । दूसरे केवल इस प्रकारके समाधानसे कि ' हम स्वयं तो नहीं खा जाते हैं ' किसी कामका खर्च छुपाकर किसी दूसरे मदमें डाल देना या और किसी प्रकारसे बतला देना भी ठीक नहीं हैं । गरज यह कि सार्वजनिक धनका उपयोग पूरी सत्यता और मितव्ययताके साथ होना चाहिए ।

जैनसिद्धान्तप्रकाशिनी संस्थाके समान एक दो संस्थायें ऐसी भी चल रही हैं जिनमें सर्व साधारणका कुछ भी हाथ नहीं है । जो महाशय उन्हें चला रहे हैं, उनकी

इच्छा ही उनके संचालनमें सब कुछ है। यद्यपि उनकी सत्यनिष्ठा और निस्वार्थतामें हमें कुछ भी सन्देह नहीं है, तो भी हम यह आवश्यक समझते हैं कि वे अपने उत्तरदायित्वके महत्त्वको समझें और उसे उदारतापूर्वक अनेक लोगोंमें बाँट दें, अर्थात् दश-बीस उत्साहियोंकी एक कमेटी स्थापित करके उसकी सम्मतिसे काम करें। ऐसा करनेसे संस्थाओं पर लोगोंका विश्वास बढ़ेगा और काम भी सुव्यवस्थित पद्धतिसे चलेगा।

आशा है कि हمارे समाजके संस्था-संचालक सज्जन हमारे इस लेखपर ध्यान देंगे और अपने उत्तरदायित्वको समझकर संस्थाओंकी उन्नति करनेमें दत्तचित्त होंगे। ९-१०-१६.

दूसरोंकी आलोचनाओं, दूसरोंके मतों और दूसरोंके विचारोंपर आधार रखनेवाले मनुष्योंको कभी कोई लाभ नहीं होता। एनिंग साहिब एक जगह लिखते हैं—“जो मनुष्य यह सोचकर कि लोग मेरी आलोचना करेंगे—अपनी आन्तरिक उच्च भावनाओंको दबा देता है और दूसरे मनुष्योंके साथ हिंसात्मक व्यवहार करनेका योग्यायोग्यके विचार बिना प्रयत्न करता है; उसकी बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है और चरित्र हल्का-नीच-हो जाता है।”

+ + + +

मैं अमुक पक्षके अन्दर पैदा हुआ हूँ यह सोचकर अथवा मेरे माता, पिता, भाई, बन्धु अमुक मतके हैं यह सोचकर जो किसी मतविशेषका पक्षपाती बन जाता है, वह कभी न्यायशील नहीं हो सकता। इसीलिए राजकीय और धार्मिक झगड़े होते हैं, इसीलिए मीलोंके मालिक, हुनरों और उद्योगोंके संस्थापक, राजकर्मचारी और धार्मिक नेता अपने ही हितके लिए—अपनी ही सत्ता बढ़ानेके लिए—लोगोंके हकोंको—स्वत्वोंको—मिष्टियोंमें मिलानेका प्रयत्न करते हैं।

-ट्राइन ।

## बाल-विवाह ।

[ले०, श्रीयुत ठाकुर शिवनन्दनसिंह बी. ए.।]

१ पशु-जगतमें कोई पशु, बिना सर्वांग पुष्ट हुए बच्चा नहीं देता। मनुष्य-जगतमें अंगोंकी पुष्टिके लिए २५ वर्षसे अधिक समय चाहिए। अतएव इस अवस्थाके पूर्व ही गर्भाधान करना पशुओंसे भी हीन कार्य करना है। ऐसा करना न केवल निन्दनीय है बल्कि अति हानिकारक भी है।

२ तरुणता (जवानी) के प्रथम चिह्नोंसे यह नहीं कहा जा सकता कि अब वे विषय आदिके योग्य हो गये। बच्चेको दूधका दाँत निकल आने पर यह नहीं समझा जाता कि वह ईख चूस सकता है।

३ गुड़ियाँ, बुरी तरह पर खेलनेसे, यानी उनकी शादी करना, गुड़ियोंको गुड़ियोंके साथ सुलाना और उन्हें बच्चे होना आदि; बच्चोंके मुँह पर उनके विवाहकी बातें करना जिससे उनको यह ख्याल पैदा हो जाय कि वे सयाने हो गये, या ऐसी ही बातोंसे, बच्चोंका विवाह कर देनेसे और उनका आपसमें मेल जोल होनेसे, या साथके सोनेसे, बच्चे, समयके पहले ही सयाने हो जाते हैं और उन्हें शारीरिक हानि पहुँचती है।

४ अल्पायुका गर्भ माता पिता और स्वयं उस पेटकी सन्तान तीनोंके लिए अत्यन्त

हानिकारक होता है। अक्सर ऐसी अवस्थाका गर्भ नष्ट हो जाता है। बालगर्भधारिणीको बच्चोंके जन्म समय अत्यन्त कष्ट होता है और बहुधा उसकी मृत्यु हो जाती है। यदि इस कठोर कष्टसे प्राण न निकला, तो बच्चा कोमल अंग चूसचूस कर उन्हें इतना निर्बल कर देता है और दूसरी या तीसरी बार तक उनका शरीर ऐसा निर्बल हो जाता है कि वे जीवनपर्यन्त आरोग्य नहीं रह पातीं; बल्कि प्रसूतक्षय या और किसी असाध्य रोग द्वारा उनका अन्त अवश्य ही हो जाता है।

+ ५ पच्चीस बाल-गर्भवती स्त्रियोंकी जाँच की गई जिससे मालूम हुआ कि ५ लड़कियोंका गर्भ गिर गया, ३ बच्चा जननेके वक्त मर गई, ५ को जननेके समय अत्यन्त कष्ट हुआ और उनके पेटसे बच्चे औजारोंके जरिये निकाले गये, ५ को प्रसूतका रोग हो गया, २ बच्चा पैदा होनेके कारण अत्यन्त निर्बल होकर मर गई, ३ दूसरी बार बच्चा जनते समय मर गई और २ तीसरी बार बच्चा जनते समय मर गई। अत्यन्त कष्ट उठाकर जो मरनेसे बच गई, उनमेंसे १२ की तन्दुरुस्ती जन्म भरके लिए बिगड़ गई। अर्थात् कुल २५ मेंसे १० तो मर गई और १२ जन्मरोगिणी हो गई; केवल ३ लड़कियाँ अच्छी रहीं।

+ Dr. D. C. Shome, Medical congress, Calcutta.

६ बालमाताओंको असह्य कष्ट होते हैं। जैसे हमल गिर जाता है और उनकी आत्माको दुःख पहुँचता है। मरा हुआ बच्चा पैदा होता है, इससे भी उनको कष्ट उठाना पड़ता है। जिन्दा पैदा होकर तुरन्त मर जाता है और मरना बिना तकलीफके नहीं होता। बच्चा इतना कमजोर पैदा होता है कि दूध नहीं पी सकता। बच्चा कुछ दिनों-तक जिन्दा रहता है, पर उसका शरीर क्षीण होता रहता है और जल्द ही मर जाता है। बच्चा सब आपत्तियोंसे बचकर बड़ा होकर निर्बल स्त्री या पुरुष होता है और जिन्दगी भर कष्ट भोगता रहता है।

गत मनुष्यगणनाकी रिपोर्टसे ज्ञात होता है कि बाल्यावस्थाका गर्भ अक्सर गिर जाता है। पहले दो तीन बच्चे जो बालमाताओंसे उत्पन्न होते हैं अक्सर मर जाते हैं और ऐसे बच्चे कमजोर, नाटे, दुर्बल, आयुपर्यन्त रोगी और अल्पायु होते हैं। एक हजार बच्चोंमेंसे ३३३ बच्चे एक वर्षकी आयुमें मर जाते हैं, अर्थात् हर तीन बच्चोंमेंसे एक बच्चा मर जाता है।

भारतके नवयुवक, प्रायः सभी पेशाब, पेचिश या बुखारके रोगसे दुखी रहते हैं। यहाँ पेशाबकी बीमारियोंसे सारी दुनियाँसे अधिक लोग मरते हैं—फ्री सैकड़ा १५ नवयुवक इस रोगके ग्रास बनते हैं।

भारतके प्रधान प्रधान डाक्टरोंने निश्चय किया है कि भारतवासियोंकी तन्दुरुस्ती

३०-४० वर्षमें खराब होजाती है। इसका कारण यह है कि लड़कपनकी शादीसे उनका शरीर क्षीण हो जाता है और फिर जल्द ही बालबच्चोंकी चिन्ताका बोझ उनपर आपड़ता है। इससे उनको अत्यन्त मानसिक कष्ट उठाना पड़ता है और उसका नतीजा यह होता है कि उनका स्वास्थ्य खराब हो जाता है।

जो विद्यार्थी हैं उनको स्कूल या कालेजके भारके ऊपर बालबच्चोंका कठिन भार भी उठाना पड़ता है। इस दोहरे बोझको सँभालना उनके लिए अत्यन्त कठिन हो जाता है और उनकी तन्दुरुस्ती बिगड़जाती है। +

सारांश यह कि बाल-विवाहसे भारत गारत हुआ जाता है। यदि अब भी हम सावधान न हुए तो हमारी सब आशायें धूलमें मिल जायँगी और हमारी जातिका सर्व-नाश होने-वाला है, यह एक निश्चित विषय हो जायगा।

+ इतिहासकार टाल वाइस हीलर लिखते हैं कि “जबतक भारतवासी छोटी छोटी बालिकाओंका विवाह छोटे छोटे बालकोंसे करते रहेंगे, तबतक उनकी सन्तान छोटे बच्चोंसे अधिक अच्छी दशामें कभी न रह सकेगी। स्वाधीनता और स्वराज्यके आन्दोलनमें वे निस्तेज और बलहीन हो जायँगे। राजकीय उन्नतिका उपयोग करनेके लिए वे किसी भी प्रकारकी शिक्षासे समर्थ नहीं हो सकेंगे। इसमें सन्देह नहीं कि शिक्षाके प्रभावसे उनकी बुद्धिमें गम्भीरता आ जायगी और वे किसी गम्भीर तथा प्रौढ मनुष्यके समान बातें करने लगेंगे; परंतु सब कुछ होते हुए भी उनका आचरण असहाय बालकोंहीके समान बना रहेगा।”

यद्यपि भारतललनाओंको हमने विद्या और विज्ञानसे वञ्चित रक्खा है तो भी परमात्माकी दयासे, अन्य राष्ट्रकी स्त्रियोंके सम्मुख उमका सिर ऊँचा ही है—सुशीलता, सुन्दरता पवित्रता, नम्रता, पातिव्रत और स्वार्थत्यागमें ये अब भी बाजी मारे हैं। शिक्षासे वञ्चित रक्खे जाने पर भी ऐसे पवित्र विचार! गुलामीमें जकड़ी रहने पर भी ऐसा उत्तम ऐसा उच्च स्वभाव! बाल-माता बनाई जाने पर भी ऐसा सुन्दर और मनोहर शरीर! बालविवाहकी कुप्रथा नवीन भारतके लिए अत्यन्त लज्जास्पद है, इसको निर्मूल करना भारतसन्तानका प्रथम और महान् कर्तव्य है।

**बालविवाहका कारण भारतकी उष्णता नहीं है।**

हमारे नये धर्म-शास्त्रोंने भारतवासियोंके हृदयपर ऐसा सिक्का जमा लिया है कि आज बीसवीं शताब्दीके उच्च शिक्षित—अनेक एम. ए., बी. ए.—यह मान बैठे हैं कि भारतकी आबोहवामें यह तासीर है कि यहाँ लड़कियाँ जल्द सयानी हो जाती हैं। भारत ऐसा गरम देश है कि यहाँ कन्यायें बहुत जल्द रजस्वला हो जाती हैं और बङ्गालकी १२—१३ वर्षकी बाल-मातायें इसके सुबूतमें पेश की जाती हैं। लोगोंको दृढ विश्वास हो गया है कि यदि सारे भारतमें नहीं तो बङ्गाल-प्रान्त और उसके बाद संयुक्तप्रान्तमें, प्रकृति दस बरसकी लड़कियोंको विवाहके लिए बलिक माता बननेके लिए योग्य बना देती है। दस वर्षकी लड़कियोंको गर्भ रह गया

है, उनमेंसे बहुतोंने ठीक समय पर सन्तान प्रसव किया है और दोनों जीते जागते रहे हैं ।

डाक्टर चक्रवर्ती लिखते हैं कि “ मैं एक लड़कीको बाल्यावस्थाहीसे भलीभाँति जानता हूँ जिसे दस वर्षकी उमरमें लड़का पैदा हुआ । ” डाक्टर राबर्टन कहते हैं कि “ एक कारखानेमें काम करनेवाली लड़की ११ वर्षकी आयुमें गर्भवती पाई गई । ” डाक्टर बेली लिखते हैं कि “ कलकत्तेके एक रईसकी ११ वर्ष ९ महीनेकी लड़कीको लड़का पैदा हुआ । ” कई अन्य सम्य रईसोंसे डाक्टर साहबने उसकी सच्ची अवस्था दर्यापत की और सर्भाने उसकी आयु ११ वर्ष ९ महीने बताई । डाक्टर ग्रीन कहते हैं कि “ ढाकेमें मैंने एक लड़कीको १२ वर्षकी आयुमें गर्भवती पाया; पर लड़का पैदा होते वक्त बेचारी लड़की मर गई । ” डाक्टर कन्हैयालाल दे कहते हैं कि “ बङ्गालमें आम तौरपर बारह वर्षकी लड़कियाँ गर्भवती पाई जाती हैं । ” \*

इस प्रकार एक दो नहीं, आजकल सैकड़ों हजारों बाल-मातायें भारतमें मौजूद हैं । अब देखना यह है कि भारतके उष्ण देश होनेसे—यहाँकी जलवायुकी विलक्षणतासे—यहाँ कुमारियाँ जल्द ऋतुमती होती हैं, या इसके कुछ और कारण हैं और अन्य देशोंमें प्रकृतिका क्या नियम है ।

जगत्प्रसिद्ध डाक्टर हालिक लिखते हैं “ जाँच करने पर यही मालूम हुआ है कि संसारकी सब जातियोंमें कन्यायें लगभग एक ही उमरमें रजस्वला होती हैं । यदि आफ्रिका जैसे गर्म देशकी हबशी लड़की और यूरोप जैसे ठण्डे देशकी गोरी लड़की एक ही ढँगसे परवरिश पावें तो दोनों एक ही साथ ऋतुमती होंगी । ” +

यद्यपि इंग्लैण्डके मुकाबले भारतमें लड़कियाँ जल्द सयानी हो जाती हैं, पर यह सन्देहकी बात है कि भिन्न भिन्न देशोंमें भिन्न भिन्न समय पर लड़कियाँ सयानी हों । †

मिस्टर राबर्टसनने खूब जाँचकर निश्चय किया है कि भूमण्डलके सब देशोंमें लड़कियाँ लगभग एक ही आयुमें रजस्वला होती हैं । वे बतलाते हैं कि भारतमें प्राकृतिक नियमानुसार बालिकायें रजस्वला नहीं होती, वे कुरीतियों और बुरे व्यवहारोंसे, जबर्दस्ती सयानी बना दी जाती हैं । वे लिखते हैं कि “ भारतकी राजनैतिक तथा सामाजिक दशा ऐसी बिगड़ी है, यहाँका कानून, यहाँके रीतिरिवाज ऐसी बुरी अवस्थामें हैं, भारतमें स्त्रियाँ ऐसी मूर्खा बना दी गई हैं, वे ऐसी सख्त गुलामीमें जकड़ी हुई हैं, यहाँकी विवाह-सम्बन्धवाली धार्मिक पुस्तकें ऐसा बुरा उपदेश देती हैं कि भारतकी कन्यायें प्रकृति-नियमके विरुद्ध जल्द सयानी हो जाती हैं ।

\* Medical Jurisprudence for India by R. Chevers, page 673.

+ The origin of Life page 363.

† Annals of Medical Science.

यदि अमरीका या इंग्लैण्डकी यही दशा रहती तो वहाँकी लड़कियाँ भी इतनी ही जल्द सयानी होती। अमरीकामें भी बेचारी असहाय, समाजसे गिरी हुई ११-१२ वर्षकी लड़कियाँ ( Prostitutes ) बाज बा-  
तोंमें १७-१८ वर्षकी स्त्रियोंकीसी जान पड़ती हैं। और किसी भी देशकी लड़की हो, वह यदि उसी बुरी तरह पर रक्खी जायगी तो उन गिरी हुई बाजारू लड़कियोंकी तरह बहुत जल्द सयानी हो जायगी। देहातोंके मुकाबले शहरोंमें हर देशमें लड़कियाँ जल्द सयानी हो जाती हैं, क्योंकि शहरोंमें इन लड़कियोंके उभाड़नेके समान ज्यादा पाये जाते हैं। +

जवानी जल्द बुलानेके लिए कोई और चीज उतना काम नहीं करती जितना कि प्रेमकी बातें करती हैं। बेहूदे किस्से और खेल, या बच्चोंको यह याद दिलाते रहना कि वे अब जवान हो गये, या यह कि उनकी युवा अवस्था अब निकट है, ये सभी जवानीके आमंत्रणके समान हैं।

सुप्रसिद्ध वैद्य धन्वन्तरी सुश्रुतमें बताते हैं कि भारतमें “ कन्या बारह वर्षकी आयुमें रजस्वला होती है और यह रजोधर्म पचास वर्षकी आयुमें अकसर बन्द हो जाता है। ”

भूमण्डलके अन्य देशोंमें भी रजस्वला होनेका यही नियम है। अत्यन्त ठण्डे इंग्लैण्डमें भी इ-

सी आयुमें लड़कियाँ रजस्वला हुआ करती हैं। वहाँ पर भी १२ से १७ वर्षमें, और कभी कभी नौ वर्षकी आयुमें ही लड़कियाँ रजस्वला हो जाती हैं और ४५-५० वर्ष तक हुआ करती हैं। \*

इंग्लैण्डके ‘मैचिस्टर लाइन इन’ अस्पतालमें ३४० लड़कियोंकी परीक्षा ली गई, तो उनमेंसे १० लड़कियाँ ११ वर्षकी आयुमें, १९ बारह वर्षकी आयुमें, ५३ तेरह वर्षमें ८५ चौदहमें, ९७ पन्द्रहमें और ७६ सोलह वर्षकी आयुमें रजस्वला हुईं।

भारतमें २७ गोरी लड़कियोंकी जाँच हुई; उनमेंसे—

४ लड़कियाँ १२—१३ वर्षके बीचमें,  
८ ” १३—१४ के बीचमें,  
९ ” १४—१५ में,  
५ ” १५—१६ में और,  
१ लड़की १६—१७में रजस्वला हुई।

डा० हटक्लिन्स कहते हैं कि “ दो गोरी लड़कियाँ इतनी जल्द रजस्वला हुईं कि वे ग्यारह वर्ष सात महिनेकी आयुमें मातायें बन सकती थीं \* । ” डा० राबर्टसन कहते हैं कि “ भारत और इंग्लैण्ड दोनों जगह नौ वर्षकी लड़कियाँ रजस्वला हुआ करती हैं या हो सकती हैं । ” \*

इन महान् पुरुषोंके वाक्योंसे प्रकट होता है कि दुनियाँमें रजस्वला होनेका समय प्रकृ-

+ The origin of Life by F. Helick page 378.

\* Mediel Jurisprudence by R. Chevers, pages 672-692.

तिने एकसा रक्खा है । अब यह देखना है कि क्या अन्य देशोंमें भी कभी बाल-विवाहकी चाल थी और क्या उन देशोंमें भी बाल-मातायें हुआ करती थी ?

\* बालविवाहका रिवाज लगभग सब देशोंमें था जबतक कि वे देश असभ्यावस्थामें थे । यहाँतक कि इंग्लैण्डमें भी अठारहवीं शताब्दीके शुरू तक यह कुरीति जारी थी । + फ्रांसके राजा फिलिपने इंग्लैण्डकी राजकुमारीको १२ वर्षकी छोटी आयुमें ब्याहा था । आपकी दूसरी राजकुमारीका विवाह नौ वर्षकी आयुमें हुआ । जब इंग्लैण्डके राजा रिचर्डका विवाह फ्रांसकी राजकुमारीसे हुआ उस समय राजकुमारीकी आयु कुल आठ वर्षकी थी । \* एलिजबेथ हार्डविकका विवाह १३ वर्षकी आयुमें हुआ । \* आडरे ( सौथ एम्पटनके अर्लकी लड़की ) का विवाह हो चुका था जब १४ वर्षकी अवस्थामें उसकी मृत्यु हुई । \* इंग्लैण्डके राजा हेनरी सातवेंके अत्यन्त निर्बल होनेका कारण यह था कि उनकी माताका विवाह कुल नौवर्षकी अवस्थामें हुआ था और जब हेनरीका जन्म हुआ तब लेडी मार्गरेटकी आयु कुल दस वर्षकी थी । \* इंग्लैण्डके उच्च श्रेणीके लोगोंकी प्रायः यही हालत थी; वे अत्यन्त न्यून अवस्थामें विवाह करते थे ।

इंग्लैण्डकी रेस्क्यू सुसाइटीने सरकारसे प्रार्थना की थी कि समाजसे गिरी हुई दससे

\* Medical Jurisprudence for India by R. Chevers page 692.

सोलह वर्षकी लड़कियोंके लिए एक घर बनना चाहिए, क्योंकि ऐसी कम उमरकी लड़कियोंकी दुर्खास्तें उन लोगोंको हमेशा नामंजूर करना पड़ती थी ।

मारिसका विवाह आठ वर्षकी आयुमें हुआ और १४ वर्षके पहले ही उन्हें लड़का हुआ † । बरजीनियाँ नगरमें एक १३ वर्षकी लड़कीको बिना किसी अधिक कष्टके लड़का पैदा हुआ \* । इंग्लैण्डमें एक युवती स्त्री दस वर्षके लड़केके साथ सो रही थी । उसके हृदयमें पाप समाया और उसने यह सोचकर कि उस लड़केके साथ विषय करनेसे गर्भका भय नहीं है, भोग किया । पर उसे गर्भ रह गया और बड़ी जिल्लत और शर्म उठानी पड़ी † । एक दस वर्ष १३ दिनकी लड़कीके लड़की पैदा हुई । उसका वजन ७ पाउण्ड था ‡ ।

टेलरसाहबका कथन है कि “ किसी भी देशमें नौ वर्षकी लड़कियाँ गर्भवती हो सकती हैं । अर्थात् ऐसा हो जाना असम्भव नहीं है § ।

जगत्प्रसिद्ध डाक्टर हालिक लिखते हैं—  
“ मैंने एक सात वर्षके लड़केका अंग, विषय करने योग्य पाया है । प्रकृतिका नियम इस

\* Philadelphia Medical Examiner. April 1855.

† The origin of life page 456.

‡ Transylvania Journal vol. VII page 447.

§ Medical Jurisprudence by R. Chevers page 673.

विषयमें बड़ा बेढंगा है। सात वर्षका लड़का विषय कर सकता है और गर्भस्थिति कर सकता है।”

उपर्युक्त कुल बातें ठण्डे देशोंकी हैं जहाँ भारतकी तरह गरमी नहीं पड़ती, पर रज-स्वला होनेका समय अथवा बाल्यावस्थामें गर्भवती हो जाना उक्त देशोंमें भी वैसा ही है जैसा भारतमें है।

मुसलमानोंमें भी यह कुरीति थी और है। इनके कानूनकी किताबोंसे पता चलता है कि सात वर्षके ऊपरकी आयुवाली लड़कियोंके साथ विषय करना जायज है \*। मुसलमानोंके नबी मुहम्मदने आयेशासे सात वर्षकी आयुमें विवाह किया और जब वह आठ वर्षकी हुई तब उसके साथ संभोग किया +। यदि किसी नौ या दस वर्षकी लड़कीमें युवावस्थाके कोई चिह्न प्रकट हों तो वह बालिग समझी जाती है †।

इन अनेक देशों और जातियोंके उदाहरणोंसे यह सिद्ध हुआ कि यदि भारतमें छोटी अवस्थामें लड़कियाँ रजस्वला होती हैं तो इससे यह नतीजा नहीं निकाला जा सकता कि भारतके जलवायुमें ऐसी उष्णता है कि लड़कियाँ जल्द सयानी हो जाती हैं। सारांश यह कि भूमण्डलके प्रत्येक देश और

प्रत्येक जातिमें इस बारेमें प्रकृतिका एक ही नियम है और भारतके जलवायुमें कोई विशेषता अथवा न्यूनता नहीं है। जब देशकी अवस्था खराब होती है और लोग ज्ञानहीन रहते हैं तब वे बालविवाहकी बुरी चालमें फँस जाते हैं।

#### प्रकृतिका अद्भुत रहस्य।

अभी हम दिखा चुके हैं कि नौ वर्षकी लड़कियाँ गर्भवती होकर बच्चा जनती हैं और दस या इससे कमके लड़कोंद्वारा स्त्रियाँ गर्भवती हो गई हैं। अब दूसरी ओर देखिए— टामस पार १९२ वर्ष तक जिये। उन्होंने १२० वर्षकी आयुमें विवाह किया और १४० वर्षकी आयुमें उन्हें लड़का पैदा हुआ ×। फ्रेलिक्स प्लेटर बतलाते हैं कि उनके दादाको १०० वर्षकी आयुतक बराबर लड़के हेते रहे \*। सीज नगरके बड़े पादरी लिखते हैं कि “सीजमें एक ९४ वर्षके पुरुषने एक ८३ वर्षकी स्त्रीसे विवाह किया। स्त्री गर्भवती हुई और उसे पुत्र उत्पन्न हुआ +।” मारशल डी एस्टीने अपनी दूसरी शादी ९१ वर्षमें की। मारशल डी रिचलने, मैडम डीराथके साथ ८४ वर्षकी उमरमें शादी की। सर स्टीफेन फ्राक्सकी शादी ७७ वर्षकी आयुमें हुई और उन्हें चार लड़के हु-

× Reference given in three books (1) Philosophical Transaction (2) The origin of Life and (3) The conjugal Relation ship.

\* The conjugal Relation ship as to health by K. Gardner page 159-167.

+ History of the Academy of science.

\* Notes on Muhammedon Law by Khan Bahadur M. T. Khan,

+ The Origin of Life page 458.

† Maenaghtens Euhammedan Law pages 228 & 266.



ए-पहला ७८ वें वर्षमें, दूसरीबार दो एक साथ और चौथा ८१ वें वर्षमें। मिमायर्स डी ने ८० वर्षकी आयुमें विवाह किया और उसे तन्दुरुस्त लड़के पैदा हुए। बेगन साहब बतलाते हैं कि “ मेरे एक मित्र ७५ वर्षकी आयुमें एक स्त्रीकी मुहब्बतमें फँस गये और उन्होंने उसके साथ विवाह किया । ”

### विज्ञानद्वारा विवाह-काल-निर्णय ।

हम ऊपर दिखला चुके हैं कि जन्मके कुछ ही वर्षोंके बादसे मरणके कुछ वर्ष पहले तक स्त्री और पुरुष दोनोंहीमें भोगकी शक्ति रहती है। अतएव, अब विचार इस बात पर करना है कि इस शक्तिसे काम लेनेके लिए कौन उचित समय है, किस आयुमें स्त्री और पुरुषको विवाह करनेसे हानि न होगी। तरुणता या जवानी उस अवस्थाका नाम है जब अंगोंकी प्रौढता प्रारम्भ होती है। संसारके सब देशोंमें, भूमण्डलकी प्रत्येक जातिमें यह अवस्था पुरुषमें सोलह वर्षकी आयुसे और स्त्रीमें बारह वर्षकी आयुसे शुरू होती है। जन्मसे इस अवस्था तक केवल जीना और बढ़ना था; पर अब जीवकी बाढ़शक्तिका काम हड्डी और पट्टोंको पुष्ट करनेके आतिरिक्त अपनी सब शक्तियोंकी उन्नति तथा सन्तानोत्पत्ति-शक्तिकी वृद्धि करना है।

शरीरकी सातों धातुओंमें रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा और शुक्रमें नया चमत्कार आ जाता है। शुक्र या वीर्य जो अबतक मन्द था एक नये भावसे अपनी प्रधानता प्रकट क-

रके शरीररूपी नगरका राजा बन जाता है। जैसे ईखमें रस, दहीमें घी और तिलमें तेल है, उसी तरह समस्त शरीरमें वीर्य है। तरुणतामें वीर्यवृद्धि और पुष्टता होती है, अतएव शरीरके प्रत्येक अंगमें पुष्टता होती है। शरीरमें बल और पराक्रमका प्रवेश होता है, चेहरा चमकने लगता है, सुडौल हो जाता है और सारे शरीरमें एक खास तरहकी खूबसूरती आ जाती है।

यद्यपि तरुणताके प्रथम चिह्न पुरुषमें १६ और स्त्रियोंमें १२ वर्षकी उमरमें क्रमानुसार दिखाई देने लगते हैं, पर वीर्य और इन्द्रियोंकी पुष्टिमें अभी पूरे दस वर्ष और बाकी हैं। यह समय अकंटक बीत जाने पर सर्वांग पुष्ट हो जाते हैं; शारीरिक, मानसिक और आत्मिक शक्तियोंमें प्रकाश आ जाता है; शरीरमें बल और पराक्रमकी थाह नहीं रहती; मनमें उमंग, अंगमें फुर्ती और चेहेरेसे आनन्दकी झलक दीखती है। अर्थात् पुरुषोंको वीर्य और शरीरके पुष्ट होनेके लिए जन्मसे २६ वर्ष और स्त्रियोंको २२ वर्ष चाहिए।

इस अवस्थाके जितने ही पहले और जितने ही अधिक कच्चे शरीरसे वीर्य निकलता है, शरीरकी पूर्ण पुष्टि और मानसिक आदि सब शक्तियोंके लिए वह उतना ही अधिक हानिकारक होता है।

अतएव विज्ञानद्वारा विचार करनेसे पुरुषोंके लिए २६ से ३२ तककी और स्त्रियों-

के लिए २२ से २८ तककी आयु, विवाहके लिए सर्वोत्तम जान पड़ती है।

संसारकी सारी सुशिक्षित और सभ्य जातियोंमें ऐसी ही अवस्थामें विवाह हुआ करते हैं।

डाक्टर एफ. हालिक कहते हैं:-“यूरोप और अमरीकामें आम तौर पर विवाह करनेका समय पुरुषके लिए २८ से ३१ वर्ष तक और स्त्रीके लिए २३ से २८ वर्ष तक होता है। पर उन लोगोंकी संख्या, जो और देरमें विवाह करते हैं या वे स्त्रीपुरुष जो जीवनपर्यन्त विवाह करते ही नहीं, बढ़ती जा रही है।”

### एक उदाहरण।

बाबू अमीचन्द और बाबू घनश्यामदास कालेजके सहपाठी मित्र हैं। बाबू अमीचन्दको एक लड़का है और घनश्यामदासको एक लड़की। दोनों मित्रोंने कालेजमें ही तै कर लिया है कि उनके बच्चोंका विवाह एक साथ होगा। बड़ी धूमधामसे १२ वर्षके केदारनाथ १० वर्षकी चन्द्रमुखीके साथ ब्याहे गये। बाबू अमीचन्द इसी साल M. A. की परीक्षामें उत्तीर्ण होकर डिप्टी कलेक्टरीके पद पर नियुक्त हुए हैं। केदारनाथका शुभ विवाह हुए कुल अढ़ाई वर्ष बीते थे। आज फिर घरमें मङ्गलोत्सव हो रहा है। महफिलमें काशीकी नामी नामी रण्डियाँ आई हैं। सारे शहरमें धूम मच गई है। लोग बाबू अमीचन्दके भाग्यकी सरा-

हना कर रहे हैं। स्त्रियाँ ईर्ष्यासे गुड़ियासी अति सुन्दरी चन्द्रमुखीको देख कर कहती हैं-“परमेश्वर तू धन्य है। जिस पर परमेश्वर प्रसन्न होता है, उसे इसी तरह हर तरह सुख सम्पत्ति देता है! देखो न कहाँ चन्द्रमुखी और कहाँ गोद भराई! अभी तो अमीचन्दकी पतोहू लड़कीसी लगती हैं, पर वाह रे भाग्य! वाह रे ईश्वरकी देन कि उनकी गुड़ियासी बहूको लड़का होनेवाला है।” बाबू अमीचन्दके माता पिता दोनों जीवित हैं। वे आज फूले नहीं समाते। अभी पतोहूकी आयु १३ वर्षसे कम ही है और दिन पूरे हो गये!

आज दो दिनसे घरमें दाइयोंकी भरमार है। सारे शहरकी बूढ़ी खुशामदी स्त्रियाँ घरमें खचाखच भरी हैं। सब माथे पर हाथ रखकर उदास होकर बैठी हैं। बाबू अमीचन्द भी तार पाते ही डाकगाड़ीसे रवाना हो गये। दाइयोंसे काम न चलनेपर मिस साहबा बुलाई गई और उनके कहनेपर सिविल सर्जन भी उपस्थित हुए। कई और डाक्टर भी बैठे हुए राय मिला रहे हैं, पर चन्द्रमुखीकी आह एक मिनटको नहीं रुकती। केदारनाथ बूढ़ी स्त्रियोंसे खुल्लमखुल्ला डाँटे जानेपर और बेहया कहे जानेपर भी बहूके पास जानेसे नहीं मानता। वह अपना कमरा और बहूका कमरा एक किये है। लाख कोशिश करने पर भी उसकी आँखोंसे आसुओंकी बड़ी बड़ी बूँदें टपक पड़ती हैं। वह घुटने

टैककर अपने कमरेमें बारबार प्रार्थना करता- है—‘ हे ईश्वर ! तू मेरी जान जान भले ही लेले, पर उसको बचा । ’ डाक्टरोंने निश्चय कर लिया कि बिना आपरेशनके काम न चलेगा, और यदि बहू इसी समय क्लोरोफार्मसे बेहोश नहीं कर दी जायगी, तो बस अब उसके प्राण न बचेंगे । सिविल सर्जन साहब नशतर आदि लेने कोठीं गये और आये । बेचारी बालिका बेहोश कर दी गई । बेहो- शीके पहले चन्द्रमुखीने गद्गद् स्वरसे केदार- नाथकी ओर देखकर कहा था— ‘ प्यारे ! मैं अब परलोकको जा रही हूँ । ’ बस उस समयसे केदार हृदसे ज्यादा परेशान है और बैठा बैठा न जाने क्या सोच रहा है ।

बेहोश होनेके आधे घण्टे बाद मरा हुआ लड़का पैदा हुआ और थोड़ी ही देर बाद चन्द्रमुखीके प्राण पखेरू भी उड़ गये ।

बाबू अमीचन्द भी आगये, पर पतोहूको जीवित न देख पाये । उन्होंने यह भी सुना कि केदार बेहद परेशान है । वे

दौड़े हुए उसके कमरेमें घुस गये । किन्तु, केदारको मुसकराते हुए शिष्टाचार करते देख उनका भय कुछ कम हुआ । वे बोले—“बेटा, लोगोंने तुम्हारी शोचनीय अवस्थाके विषयमें जो कहा था, उससे तो मैं बहुत ही घबडा गया था । ” उसने उत्तर दिया—“जी हाँ, पहले मुझे बड़ा दुःख था, पर अब कुछ मिनटोंसे मैं बिलकुल अच्छा हूँ । ” वे बाहर आये और उस समयके जरूरी कार्यकी चिन्तामें लगे । सहसा केदारके कमरेसे पि- स्तौलकी एक आवाज हुई ! लोग दौड़कर दर- वाजा तोड़कर भीतर घुसे तो केदारको मरा हुआ पाया । टेबुल पर यह पत्र मिला—“प्या- री चन्द्रमुखीकी मृत्युके हमी लोग प्रधान कारण हैं, अतएव उसे अकेले ही प्राणदण्ड न मिलना चाहिए । उसमें मेरे माता, पिता- पितामहका भी दोष है । मेरी मृत्युसे उनको भी दण्ड मिल जायगा—प्रकृतिका कठोर नियम मैं पूरा किये देता हूँ । ” \*

## युवकोंके प्रति ।

( ले०, देशभक्त । )

अरे हमारे युवको ! तुमको, निद्राने क्यों घेरा है ?  
आलस त्याग करो कुछ उद्यम, देखो हुआ सबेरा है ॥  
देश दशा सुधरेगी तुमसे, सबको ऐसी आशा है ।  
हो उत्थान पुनः भारतका, ‘ हाथ तुम्हारे पाशा है ’ ॥ १ ॥  
समझ रहे हो क्या तुम ऐसा, ‘ हमसे क्या कुछ होना है ? ’  
छोड़ इसे तुम लगे कार्यमें, तुमसे ही सब होना है ॥  
मार्ग तुम्हारा देख रहे सब, किस पथपर तुम चलते हो ।  
स्वार्थविवश ही रहते हो, या भारत हित भी मरते हो ॥ २ ॥

\* यह लेख ‘देश-दर्शन’ नामक ग्रन्थसे उद्धृत किया जाता है । ‘देशदर्शन’ छप रहा है, हिन्दीग्रन्थ- रत्नाकर-सीरीजमें शीघ्र ही निकलेगा ।



( ले०-श्रीयुत पं० ज्वालादत्त शर्मा । )

[ १ ]

व्यवसायके कारण अमरेन्द्र बाबूके साथ हमारा परिचय होने पर उनके सौजन्य और उदारता आदि गुणोंसे हमारे साथ उनकी एक तरहसे मित्रता हो गई थी। वे त्रिपुरा जिलेके जमीन्दार थे; पर उन्होंने कलकत्तेमें आकर एक साबुनका कारखाना खोल रक्खा था। कलकत्तेकी पार्क स्ट्रीटमें रहनेके कारण उनकी मित्रता कई बड़े बड़े आदमियोंके साथ हो गई थी। अमरेन्द्र बाबू सज्जन थे, उनके घरमें उनकी स्त्रीके सिवा और कोई न था। उनकी स्त्री असामान्या रूपवती और मधुरभाषिणी थी। वह पढ़ी लिखी भी मालूम होती थी; किन्तु थी बड़ी विलासप्रिया। पर विलासिता उसके लिए शोभाका कारण थी। निश्चय ही घर काम काज करनेसे उसके रूपकी अवमानना होती। जिस समय वह बढिया कौचपर लेटी हुई बड़ी ही नजाकतसे अपने कल्पित रोगकी कहानी सुनाती थी, उस समय सचमुच ही हमें धनी अमरेन्द्र पर ईर्ष्या हो आती थी।

उस दिन अमरेन्द्र बाबू एक बढिया कुर्सीपर बैठे हुए थे। उनकी सुन्दरी स्त्रीने कोमल कौचपरसे अपना देवी-दुर्लभ हाथ बढाकर कहा—“डाक्टर बाबू, अब तो मुझे सचमुच ही ज्वर हो गया मालूम पड़ता है।”

हमने कुछ हँसकर कहा—“आपको कोई रोग नहीं है। भगवानने आपका सुन्दर शरीर

रोगोंके वासके लिए थोड़े ही बनाया है। रोग दुष्टोंको होता है।”

जमीन्दार-दम्पतीको हमारी बात सुनकर हँसी आगई। उन्होंने आपसमें एक दूसरेको देखा। दोनोंकी चितवनमें और दृष्टिमें कोमलता भरी हुई थी। अमरेन्द्रने कहा—“होता होगा, पर डाक्टरके मुँहसे यह बात अच्छी नहीं मालूम होती।”

छोटी आँखवालेको ‘हिरन जैसे नेत्रवाला’ कहनेसे वह प्रसन्न नहीं होता। पर सुन्दरीको सुन्दरी कहा जाय तो वह प्रसन्न होती है। मन-ही-मन प्रसन्न होकर, ललनासुलभ लज्जाको दिखाते हुए उसने हमारी ओर भर्त्सनाकी दृष्टिसे देखा—निस्सन्देह उसमें सन्तोष भरा हुआ था। हमने कुछ झेंपकर कहा—“नहीं, मेरे कहनेका यह आशय था कि आपको कोई रोग नहीं है और यदि रोग है भी, तो उसको डाक्टर नहीं बता सकता। किसी संन्यासीको दिखाइए और कोई दिव्य औषध खाइए।”

दोनोंका मुँह गंभीर हो गया। उन्होंने फिर एक दूसरेको देखा। हमने कहा—“कहिए तो संन्यासीको बुला लाऊँ ? हमारे यहाँ आज एक संन्यासी ठहरे हुए हैं।”

उन्होंने फिर एक दूसरेको देखा। अमरेन्द्र बाबूने कहा—“आप शिक्षित होकर इन बद-माशों पर श्रद्धा रखते हैं ! इनमें कितने चोर डाकू छिपे हुए हैं—आप जानते हैं ?”

हमने कहा—“यह ठीक है। पर उनमें अच्छे आदमी भी हैं। हमारा मित्र पागल संन्यासी है। बिल्कुल उदासीन संन्यासी है। कभी कर्मा हमारे पास आजाता है। आप कहें तो आपके साथ...”

अमरेन्द्र बाबूने कहा—“क्षमा कीजिए। इन बदमाशोंको हम अपनी कोठीकी हदके अन्दर नहीं आने देते। सभी धूर्त हैं। सभीकी गुप्त कथायें है।”

[ २ ]

हमारे अतिथि पागल साधुका भी कुछ गुप्त इतिहास था—इसमें कोई सन्देह नहीं। उसको देखनेसे यह मालूम होता था कि वह आनन्दमय है, शोक दुःख, हिताहित और शुभाशुभ विषयोंसे उदासीन है। पर जरा गौरसे देखो तो मालूम होता था कि वह दिनरात किसी घोर भावयुद्धमें लगा रहता है। हम चिकित्साव्यवसायी थे—इसीलिए उसकी मानसिक अवस्थाका बहुत कुछ आभास पा जाते थे। मानसिक संग्रामके चिह्न उसकी आँखोंमें, ललाटपर और तरुण मस्तकके किसी किसी सफेद बालमें विद्यमान थे। हमें यह भी मालूम होता था कि वह दिनों दिन उस संग्राममें जय प्राप्त कर रहा है। चाहे वह और मनुष्योंके समक्ष समदर्शी हो, पर हमें मालूम होता था कि वह स्त्रीजातिसे जरूर घृणा करता है। उसके अच्छे वंशके होनेमें कुछ भी सन्देह नहीं था। वह अच्छे साधुओंकी तरह धनको तुच्छ ही नहीं समझता था, किन्तु उसे धनसे घृणा भी थी। कोई पाँच महीने पहले जब वह हमारे पास आया था, तब हमने उसे मार्गव्ययके लिए कोई पाँच रुपये दिये थे। पहले तो उसने उन्हें लेनेसे इन्कार किया, पर बादको यह जानकर कि न लेनेसे शायद हमें तकलीफ पहुँचे—बायें हाथसे वे रुपये ले लिये। उसके जानेके कोई पाँच ही मिनट बाद हमारे

पुत्रने आकर कहा—“बाबा, आज हमारे फुट-बाल-क्लबको खूब लाभ हुआ है।” हमने पूछा—“क्या?” बालकने कहा—“आज हमारे क्लबमें वही पागल संन्यासी गये थे। सबने उन्हें नमस्कार किया। उन्होंने पूछा—‘तुम्हारा कप्तान कौन है?’ रमेशने उनके पास जाकर कहा—‘जी मैं हूँ।’ उन्होंने उसके हाथमें पाँच रुपये देकर कहा—‘लो, यह हमारा चन्दा है। पर देखो किसी तरहकी बुराई तुम्हारे क्लबमें प्रवेश न करने पावे।’”

अमरेन्द्र बाबूके घरसे आकर हम पागल स्वामीसे बातचीत करने लगे। भगवद्गीता पर वह अक्सर बहुत ही भावपूर्ण भाषण किया करता था। आज बहुतसी बातोंके बाद उसने कहा—“हमारे देशके शास्त्रमें तो लिखा है कि काम तो करो, पर कामसे अलग रहो।”

हमने कहा—“अच्छा स्वामीजी, जिस समय आप संसारमें थे उस समय भी क्या इसी नीतिके अनुसार काम करते थे?”

स्वामीजीका मुँह गम्भीर हो गया। उन्होंने कहा—“किसी दिन बताऊँगा। मैं जिस समय गृहस्थ था उस समय मुझे इन बातोंकी खबर भी न थी। जिस समय गृहस्थ था, उस समय हमारे घरमें दुर्गात्सव होता था—सभी कुछ होता था। किन्तु मैं उन सब कामोंमें राजसिक भावसे लिप्त रहता था। हाँ, जब गृहस्थ था तब एक अच्छा काम जरूर करता था—दान।”

हमने कहा—“उससे बढ़कर तो और कोई दूसरा काम ही नहीं है।”

उसने हँसकर कहा—“यह अच्छा काम भी और सब कामोंकी तरह सात्त्विक, राजसिक और तामसिक भावसे किया जाता है। राजसिक दान किसे कहते हैं—जानते हो?”

मैंने कहा—“हाँ—

यत्तु प्रत्युपकारार्थं फलशुद्ध्यै वा पुनः ।  
दीयते च परिक्लिष्टं तद्दानं राजसं स्मृतम् ॥”

उन्होंने कहा—“ठीक है। मैं क्यों दान करता था—जानते हो? मेरे पिता सामान्य अवस्थासे करोड़पति हो गये थे। पर उन्होंने किस तरह रुपया पैदा किया था, यह किसीको मालूम न था। सब लोग यही जानते थे कि वे सूद अधिक लेते हैं और इसीमें उन्होंने यह धन कमाया है; पर उनके ऐश्वर्यका मूलधन कहाँसे आया—किसीको मालूम न था। ग्राममें मशहूर था—”

स्वामीजी यह सोचकर कि बिनापूछे ही वे अपने पूर्व जीवनकी बात कह रहे हैं चुप हो गये। पर हमें बड़ा कौतुक हो गया था। हमने पूछा—“क्या मशहूर था?”

उन्होंने कहा—“यह कि हमारे बापको यक्षका धन मिल गया है। उस यक्षके धनको पाकर कोई सुखी नहीं होता—उसे कोई स्वर्च नहीं कर सकता। पिता बहुत ही कंजूस थे और वे कभी प्रसन्न भी नहीं रहते थे।”

यह कह कर स्वामीजी चुप हो गये। उनके ललाट पर चिन्ताकी रेखायें खिंच गईं। वे मनमें न मालूम क्या क्या सोच रहे थे। उन्होंने एक साथ हमसे कहा—“मरते समय पिता हमसे कह गये कि ‘मैंने बुरी तरह इस धनको इकट्ठा किया था।’ इसके सिवाय उन्होंने और कुछ भी नहीं कहा—हाँ, इतना अवश्य कहा था कि ‘यदि किसीको मालूम हो जाता कि मैंने किस तरह रुपया इकट्ठा किया है तो मुझे जरूर जेलमें जाना पड़ता’।”

स्वामी जी काँप उठे। एक दो मिनट इधर उधर देखकर उन्होंने कहा—“इसी लिए मैं दान

किया करता था—ऐश्वर्यके संग पापका जो मिश्रण था उस पापको धोनेके लिए।”

हमने अन्यमनस्क होकर पूछा—“स्वामीजी, आपका जन्मस्थान कहाँ है?”

स्वामीजीने गम्भीर होकर कहा—“इस बातको जाने दो।”

[ ३ ]

स्वामीजी कभी कभी बालकोंकी तरह हँसते थे। वे हमारे प्रस्तावको सुनकर खूब ही खिल खिलाकर हँसे। हम सब लोग भी हँस रहे थे। प्रस्ताव और कुछ नहीं उनकी तस्वीर उतरवानेका था। हमारे मित्र सुरेश्वरने शौकिया फोटोग्राफी सीखी थी। वह स्वामीजीकी तस्वीर खींचनेके लिए बहुत व्यस्त था। स्वामीजी बालकोंकी तरह हँसकर कहने लगे—‘छिः छिः इस नश्वर देहका इतना सम्मान !’

पर सुरेश्वर छोड़नेवाला नहीं था। उसने कहा—“आप तो उस चित्रको रसिएगा ही नहीं। आप एक बार ध्यानमग्न होकर बैठ जाइए। मैं आपका चित्र उतार लूँगा। आपको कुछ भी देर नहीं लगेगी।”

स्वामीजी बड़े ही दयालु थे। इस जरासी बातमें भी उन्हें हमारे दुःख पानेका ख्याल हुआ और सिर्फ इसीलिए वे चित्र उतरवानेके लिए बैठ गये। एक हिरनके चमड़े पर वे पद्मासनसे आ बैठे। क्या भीषण परिवर्तन था। हम दोनों ही विस्मित थे। शरीरके साथ मनका दृढ़ सम्बन्ध है, यह बात तो हम रोज ही प्रत्यक्ष किया करते थे; पर शरीर और मनका बन्धन इतना दृढ़ है—यह बात हमने आजसे पहले कभी नहीं जानी थी। उस डुबले, पतले, गेरुए वस्त्र पहरनेवाले और मुण्डित-शिर सन्न्यासीको देखकर कुछ भी श्रद्धा नहीं होती थी। वह भले घरका आदमी जरूर

मालूम पड़ता था; किन्तु हमारे ऊपर कृपा करके चित्र खिंचानेके लिए वही साधु जिस समय आँखें बन्द करके योगासनसे बैठ गया उस समय एक अपूर्व कान्तिसे उसका सर्वाङ्ग उज्वल हो गया। उस रूपका वर्णन करना मुश्किल है। उन्होंने अन्तरंगमें जरूर ही योगारम्भ कर दिया था। उस मूर्तिको देखकर हमें एक नये प्रकारका आनन्द प्राप्त होने लगा। हमारी धारणा थी कि मनुष्यका तेज आँखको छोड़कर और किसी इन्द्रियसे प्रकट नहीं होता है। मदनको भस्म करते समय महादेवके ललाटमेंसे निकली हुई तेजशिखाने विश्वविजयी काम-देवको भस्म किया था—यह कथा पुराणोंमें जरूर पढ़ी थी, पर आँखको छोड़कर किसी और स्थानसे हमने तेज निकलता हुआ देखा कभी नहीं था। किन्तु स्वामीजीके सारे शरीरसे एक अनिर्वचनीय ज्योति बाहर हो रही थी। अज्ञलोगोंके लिए वह ज्योति कैसी भयानक थी—उसकी बात सुनिए—

अमरेन्द्र बाबूका मोहन नामका एक नौकर था। केवल मोहन ही उनका त्रिपुराका नौकर था, बाकी सब कलकत्तेके थे। वह रूप और गुणमें रवीन्द्रनाथके 'कष्टो बेटा' के समान था। अमरेन्द्र बाबूके घरमें उसका खूब आदर था। वह अपनी इच्छासे ही काम करता था। जहाँ ज़ाँमें आता जाता—किसीको उसे बतानेकी जरूरत न थी। सभी उसका मान करते थे, उसे खुश रखते थे और उससे प्रेम करते थे। पर न मालूम क्यों हमें उससे पहले दिनसे ही घिन थी। न मालूम क्यों उसे हम बहुत बड़ा पापी, निष्ठुर—और विश्वासघातक समझते थे; पर अमरेन्द्र बाबू और उनकी स्त्रीका उस पर पूरा विश्वास था। निस्सन्देह हमारी जानमें उसने कोई बुरा-काम नहीं किया था; किन्तु फिर भी हमें उससे

द्वेष था। पर हमारी इस अपनी बनाई हुई वृत्तिमें जरूर कुछ सत्य था—यह बात उस दिनकी घटनासे मालूम हो गई।

हम लोग जिस समय स्वामीजीका चित्र उतार रहे थे उस समय मोहन भी वहाँ आगया। वह स्वामीजीको देखकर काँपने लगा। भूतके भयसे जिस तरह आदमी काँप उठता है—बुढ़ा मोहन भी उसी तरह स्वामीजीको देखकर काँपने लगा। इसके बाद वह वहाँसे लड़खड़ाता हुआ बाहर चला गया। हमने उससे जाकर पूछा—“क्या हुआ मोहन ?”

मोहनने अर्द्धस्फुटस्वरसे कहा—“माजीकी तबीअत अच्छी नहीं है। आज शामको आप एक बार उधर हो आइए।”

हमने कहा—“शामको हम जरूर आँयेंगे। तुम्हारी तबीअत कैसी है ?”

वहाँ आकर उसकी तबीअत बहुत कुछ ठीक हो गई थी। उसने झूठी हँसी हँसते हुए कहा—“तेज धूपमें आनेके कारण डाक्टर बाबू, मेरी तबीअत खराब हो गई थी।”

हमने कहा—“हम यह समझे कि सन्न्यासीको देखकर—तुम्हारी ऐसी दशा हो गई थी।”

मोहनने कहा—“नहीं। डाक्टर बाबू, जरूर आइएगा। नहीं तो माजी बहुत नाराज होंगी।”

[ ४ ]

स्वामीजी चले गये। उनका चित्र तय्यार हो गया। चित्रमें उनकी उस ज्योतिका विकास अवश्य ही नहीं हो सका; पर फिर भी चित्रमें उनके चेहरेपर यथेष्ट तेज मालूम पड़ता था। उस चित्रको देखकर सबने सुरेश्वरके शिल्पचातुर्यकी प्रशंसा की।

उस दिन अमरेन्द्र बाबू उस समय तक घर नहीं लौटे थे। उनकी स्त्री हमसे अपने कल्पित

रोगकी कहानी कह रही थी। उसके अङ्गमें एक तरहका आलस्य सदा ही बना रहता था। पर उस आलस्यसे उसकी शोभा बढ़ती थी, घटती नहीं थी।

हमने उसके साथ बात करते करते कहा—  
“उस दिन संन्यासीकी बात हमने कही थी—याद है ?”

उसने वस्त्रको सम्हालते हुए मदालसा भावसे कहा—  
“कौन संन्यासीकी ?” हमने कहा—  
“जिसे सुनकर अमरेन्द्र बाबूने कहा था कि संन्यासी प्रायः बदमाश होते हैं !”

उसने उस बात पर पूरा ध्यान न दिया और अलसभावसे पूछा—  
“कौन बदमाश ?”

हमने जेबमेंसे चित्र निकालकर उसके सामने रख दिया और कहा—  
“देखिए यह !”

सर्वनाश ! हमें इस बातकी स्वप्नमें भी आशा नहीं थी। स्नायुरोगमें उत्तेजक पदार्थ निषिद्ध हैं—यह बात हम अच्छी तरह जानते थे; किन्तु संन्यासीका चित्रगत तेज उसके स्नायुमण्डलको इतना उत्तेजित कर देगा—इस बातका हमें रतीभर भी संदेह नहीं था। चित्रको देखते ही अमरेन्द्र बाबूकी स्त्रीकी आँखें स्थिर हो गईं। हाथ पाँव अकड़ गये और मुँह रक्तसञ्चालनकी अधिकतासे सुर्ख पड़ गया। एक बार चीख मारकर वह मूर्च्छिता हो गई। हमें बहुत दुःख हुआ। हमने उसी समय बिजलीकी घंटी बजाई। नौकर उपस्थित हुआ। हमने उसकी आँखोंपर ठण्डे पानके छींटे देने शुरू किये। धीरे धीरे उसने आँखें खोलीं। हमने पूछा—  
“अब तबअित अच्छी है ?”

उसने सिर्फ सिर हिला दिया। इसी समय अमरेन्द्र भी आगये। वे घबराये हुए हमारे पास आकर बैठ गये।

हम झेंप रहे थे। हमने उनसे कहा कि “इनके

स्नायु कमजोर हैं, इसलिए एक तेजस्वी पुरुषके चित्रको देखकर इन्हें ‘फिट’ आ गया था।”

अमरेन्द्रबाबू हमारी बातको अच्छी तरह नहीं समझे। पास ही संगमर्मरकी छोटीसी मेजपर वह चित्र रक्खा हुआ था। उसे उठाकर वे देखने लगे। उन्हें उसके छूते ही मानो बिजलीका धक्का लगा। उनकी आँखें लाल पड़ गईं और उनके हाथसे वह चित्र तप्त लोहेकी तरह असह्य होकर गिर पड़ा !

उन्होंने लाल लाल नेत्र निकालकर पागलोंकी तरह चिल्लाकर कहा—  
“यह क्या है ?”

हमने कहा—  
“संन्यासीका चित्र !”

अमरेन्द्र—  
“पर यह हमारे घरमें किस तरह आया ? आप डाक्टरीके लिए आते हैं, डाक्टरी कीजिए।”

उसके दुर्विनीत व्यवहारसे हमें बहुत दुःख हुआ। उसके मुख पर कोमलताका पता तक नहीं था। केवल एक नीच और नारकी भाव चमक रहा था। उसके शरीरमें भद्रताका चिह्न भी कहीं नजर न आता था।

हमें उसकी बातको सुनकर बहुत दुःख हुआ। हमने कहा—  
“आप इस कदर आपसे बाहर क्यों हुए जाते हैं ?”

उसने पहले जैसे ही उत्तेजनाके स्वरमें कहा—  
“आप डाक्टरोंकी तरह डाक्टरी करना चाहें तो आइए। कलकत्तेमें डाक्टरोंकी कमी नहीं है। और फिर हमारे यहाँ तो न जाने कितने डाक्टर आनेके लिए लालायित हैं।”

उसके चेहरेपर नीच और निष्ठुरभाव बढ़ता जाता था। हमने सोचा कि यही भाव इसका स्वाभाविक भाव है। इसमें भद्रता और ममताका भाव केवल दिखानेके लिए ही था।



हम उसके मकानसे चले आये ।

( ५ )

हम कुछ स्थिर नहीं कर सके । स्वामीजीके चित्रको हमने बारबार देखा और आदमियोंको भी उसे दिखाया । उसे देखकर सभी प्रसन्न हुए । अमरेन्द्रबाबू या उनकी स्त्रीकी तरह किसीको बिजली जैसा आघात या बेहोशी नहीं हुई । उनका पुराना नौकर मोहन भी स्वामीजीको देखकर सहम गया था । तो क्या ये लोग स्वामीजीके साथ परिचित हैं ? स्वामीजीके पिछले जीवनकी एक बात मालूम थी कि वे बहुत बड़े ऐश्वर्यवान् थे । अमरेन्द्र बाबू भी धनवान् हैं । इन दोनोंमें क्या कोई सम्पर्क है ? पर इस प्रश्नके उत्तर पानेका कोई उपाय नहीं था । उस दिन अमरेन्द्र बाबूने हमारा जैसा अपमान किया था उसको देखकर हमने मन-ही-मन संकल्प कर लिया था कि हम उनके बुलाने पर भी कभी उनके यहाँ नहीं जायेंगे । पर इस रहस्यको खोलनेकी प्रबल इच्छा हमारे मनमें उत्पन्न होगई थी ।

कोई एक सप्ताह बाद स्वयं अमरेन्द्र बाबू हमारे यहाँ आये । उस दिनके उस क्षणभरके कठोर नीचभावका चिह्न भी अब उनके चेहरे पर नहीं था । उन्होंने हमसे क्षमा माँगी और अपने घर आनेके लिए हमसे अनुरोध किया ।

हमने कहा—“ क्या एक बात हम पूछ सकते हैं ? संन्यासी—”

हमारी बातको काटकर अमरेन्द्रबाबूने कहा—“ हाँ, यही बात कहनेके लिए तो मैं आया हूँ । एक बार किसी संन्यासीकी दवा खाकर हमारी स्त्रीका कोई रिश्तेदार मर गया था । उसी दिनसे हम लोग संन्यासियोंसे जलते हैं । उस दिन संन्यासिके चित्रको देखकर उसका पुराना

शोक फिर नया हो गया और उसके दुर्बल स्नायु उस शोकको धारण नहीं कर सके । ”

हमने कहा—“ क्या आप जिसका वह चित्र था उस संन्यासीको पहचानते हैं ? ”

अमरेन्द्रने कहा “ नहीं । ”

[ ६ ]

अमरेन्द्र बाबूने गवर्नमेण्टको परोपकारी कामके लिए बहुतसा रुपया दिया था और अपनी उदारतासे राजपुरुषोंको मुग्ध कर लिया था । अभी हाल ही उनकी इस सहृदयताके उपलक्षमें गवर्नमेण्टने उपाधि देकर उनकी सम्मानवृद्धि की है । राय अमरेन्द्रनाथ मित्र बहादुर अपने बढिया उद्यानमें अपने मित्रोंको भोज देनेकी तयारी कर रहे हैं । बाग हरतरहसे सजाया गया था । नृत्य, गीत, पान और भोजनद्वारा तृप्त होकर निमन्त्रित व्यक्ति नये रायबहादुरका दशोगान कर रहे थे । बागमें एक ओर परदा-मिलन भी हो रहा था । कलकत्तेके अनेक अच्छे घरोंकी स्त्रियाँ अमरेन्द्रगृहिणीके आदरको पाकर उसपर मोहित हो रही थीं । हमने उसका उस रातका वेश नहीं देखा था; किन्तु हम मानसचक्षुकी सहायतासे उस दैवी मूर्तिके दर्शन कर रहे थे । वही मदालसा भाव, मरालगति, मधुर और सरस हास्य तथा आँसुमें विलास-दिलोल कटाक्ष । आज अमरेन्द्र बाबूके सम्मानसे वह भी सम्मानिता हुई है । अनेक बड़े बड़े घरकी स्त्रियाँ उसका आतिथ्य पाकर खूब प्रसन्न हुई हैं ।

बागके भीतर भीड़ बहुत थी । लोगोंके झुण्डके झुण्ड घूम रहे थे । लताओंके बीचमें बैठे हुए अनेक युवक मद्यपान कर रहे थे और जोर जोरसे हँस रहे थे । हम भी बागसे बाहर एक सूखे हुए आमके वृक्षके पास एकान्तमें बैठे हुए विश्राम ले रहे थे । वहाँ चाँदनीके सिवा और कोई प्रकाश नहीं था ।

वहाँसे हम कभी सजे हुए उस बागकी ओर देखते थे, कभी निमन्त्रित व्यक्तियोंके वस्त्रोंकी शोभाको देखते थे और कभी कभी निस्तब्ध प्रकृतिको भी देख लेते थे। इसी समय किसीने हमारा कन्धा छुआ। पीछे फिरकर देखा तो स्वामीजी! पागल स्वामी, मुण्डित शिर, कृशकाय, एक मैला गेरुआ वस्त्र पहने हुए, शरीरमें घूल रमाये, दैन्य और दारिद्र्यका जीता जागता चित्र लिये हुए उस वैभवविचित्र स्थलमें खड़े हुए थे। यह वैपरीत्य हमें बहुत अच्छा लगा। एक ओर धन, ऐश्वर्य, विलास और राजसम्मान था, दूसरी ओर दैन्य दारिद्र्य और वैराग्य था। सिर्फ उनके मुँहकी ज्योति विशेष थी; किन्तु वह ज्योति रातमें अधिक दिखाई न पड़ती थी। हमने पागल स्वामीको प्रणाम करके पूछा—“स्वामीजी, आज इधर कहाँ ?”

स्वामीजीने हँसते हुए कहा—“तुमसे मिलनेके लिए। यह क्या हो रहा है ?”

अनेक बड़े आदमी अरेन्द्रको घेरे हुए धन्यवाद दे रहे थे। चित्रजीके प्रकाशमें अरेन्द्रके चेहरे पर हँसी साफ मालूम हो रही थी। हमने कहा—“स्वामीजी, आप सामने जिसे आदमियोंसे घिरा हुआ खड़ा देखते हैं—उसने राजसम्मान पाया है, खिताब पाया है—ये सब लोग उसीका अभिनन्दन कर रहे हैं। कैसा आनन्द है! दूसरी ओर उसकी स्त्री स्त्रियोंको भोज दे रही है। बड़ी सुन्दरी स्त्री है। अप्सराओंकी तरह उसका चेहरा है। कहिए स्वामीजी, क्या अब भी आप कह सकते हैं कि कामिनी और काञ्चनमें सुख नहीं है ?”

स्वामीजीने हँस दिया। फिर कहा—“हमारी कहानी सुनोगे ?”

हमने कहा—“जरूर।”

स्वामीजी सूखे हुए वृक्षके ऊपर बैठ गये। इस बार हमें उनका ज्योतिःपूर्ण मुख दिख गया। वे कहने लगे—“आज हमने मनको पूर्ण रूपसे जीत लिया है। गुरुदेव कहते हैं अब कुछ भय नहीं है। याद पड़ता है हमने तुमसे कहा था कि हम धनीके पुत्र थे और अतुल धनके मालिक थे। रुपया भी था, सुन्दरी स्त्री भी थी। अप्सराओंके समान उसका रूप था। वह मन्थरगमना, मद्दालसा, विलासाविलोलनेत्रा और मङ्गलनके समान कोमल शरीरवाली थी। कामिनी और काञ्चन दोनों ही थे—तब मैंने क्यों वैराग्य ग्रहण किया ?”

“क्यों ?” यह प्रश्न हमारे मनमें बहुत दिनोंसे उठ रहा था। हम स्थिर हो कर उनकी बातको सुनने लगे।

उन्होंने कहा—“हमारे पिताके एक मातृपितृ-हीन भानजा था। उमरमें वह मेरी बराबरका था। हम दोनों ही पिताको दादा कहते थे। हमारा विवाह हो गया था पर वह कुँवारा था। हम स्त्रीका भी विश्वास करते थे और उसका भी विश्वास करते थे। एक दिन हमने अपनी आँखोंसे देखा—कहनेकी बात नहीं—हमारी स्त्री और फुफेरा भाई—”

स्वामीजी चुप होगये। हमने अच्छी तरह उनके मुखको देखा। वह एकदम भावहीन था। उस पर द्वेष नहीं था, लज्जा नहीं थी, क्रोध नहीं था, काम नहीं था—थी केवल एक स्वर्गीय ज्योति।

वे कहने लगे—“जवानीके मदमें मत्त होकर उस समय मैंने विचार किया कि दोनोंको मार डालूँ। एक पुराना नौकर भी उनके पापमें लिप्त था। सभीको मार डालूँ और पृथ्वीका भार उतार दूँ। फिर भय हुआ, लज्जा हुई,

दूसरा ख्याल आया—पिताका पापलब्ध धन और पापीयसी स्त्री—कामिनी और काञ्चन दोनों ही पापसे सने हुए—मैं क्रोध और क्षोभसे किंक-र्त्तव्यविमूढ़ होकर विचार करने लगा । बागके बाहर एक संन्यासी ठहरे हुए थे । हमने उन्हें सब वृत्तान्त सुनाया । उन्होंने कहा—“बेटा, यह ठीक नहीं । तू धन और स्त्रीको छोड़कर हमारे साथ चल ।” मैंने देखा कि स्वामी अन्तर्यामी हैं । मैं मंत्रमुग्धकी तरह उनके साथ हो लिया । आठ वर्ष साधना करके मैं परसों ही कुछ शान्त हुआ हूँ । नहीं तो प्रतिदिन ही मनमें द्वन्द्वयुद्ध होता रहता था । धीरे धीरे मुमुक्षुवृत्ति शुद्ध होती जाती थी । आज किसीसे द्वेष नहीं है । कोई द्वन्द्व नहीं है । क्रोध नहीं है । मनमें क्षमा है, पर उनपर भगवान् क्षमा नहीं—”

स्वामीजी चुप होगये । भीड़मेंसे ठट्ठा पड़ा । जलतरंग बजने लगी ।

स्वामीजीने कहा—“इससमय क्षणिक आनन्द प्राप्त है, पर प्रकृति उन्हें नहीं छोड़ेगी । उन्हींकी भलाईके लिए उनको दण्ड मिलेगा । गुरुदेवने भविष्यत् देख दिया है—वह पागल होकर गली गली मारा फिरेगा, जूठन खावेगा । स्त्री किसी नौकरके साथ व्यभिचार करके असह्य यन्त्रणायें भोगेगी, दासीवृत्ति करेगी और अन्तमें अस्प-तालमें मरेगी । हम प्रार्थना करके भी उन्हें नहीं बचा सकते । ईश्वरकी इच्छा !”

हमने कहा—“उन्हें आपने फिर कभी नहीं देखा ?”

उन्होंने कहा—“जब हम संन्यासी होकर घरसे चले आये तब उन्हें वहाँ रहना मुश्किल हो गया । वे हमारे पिताका धन लेकर कलकत्ते

चले आये और सुना है यहाँ नाम बदलकर रहते हैं । लोग उन्हें स्त्री-पुरुष जानते हैं ।”

जलतरङ्ग बन्द हो गई । एक आदमीने कहा—“बोलो राय बहादुरकी जय ।” सैकड़ों आदमियोंने एक साथ कहा—“जय, राय बहादुरकी जय !”

स्वामीजीने कहा—“अच्छा चलते हैं । ईश्वर राय बहादुरका मङ्गल करें । यही हमारा भाई है और इसकी अप्सरातुल्य स्त्री पहले हमारी धर्मपत्नी थी ।”

स्वामीजी उठ खड़े हुए । हम विस्मयमें पड़े खड़े ही रहे, जुवानसे कुछ नहीं निकला । धूल रमाये, मैले गैरुये वस्त्र पहने, मुण्डितशिर, दुबले पतले स्वामीजी अन्धकारमें अदृश्य होगये । हमने देखा उनके चारों ओर स्वर्गीय ज्योति है और पापी अमरेन्द्र—राजसम्मानसे सम्मानित, हास्यमुख, लम्पट अमरेन्द्र—बागमें खड़ा हुआ अभिनन्दन ग्रहण कर रहा है । वह खूब तृप्त था, खूब सुखी था, खूब सम्मानित था । पर पागल धूलमें जा रहा था । उसीका धन, उसीकी स्त्री लेकर—ओफ़ ! क्या मालूम समाजमें क्या हो रहा है ! एक बार संन्यासीकी ओर हमने देखा और एक बार उसकी ओर देखा—दोनोंके भविष्यत्का स्मरण किया, स्त्रीके भविष्यत्का भी स्मरण किया । सर्वनाश !

कौन जाने कौन सम्मानित है—संन्यासी या रायबहादुर ! हम धीरे धीरे बागकी तरफको चल दिये । \*

\* श्रीयुत बाबू केशवचन्द्र गुप्त एम. ए., बी. एल. की बंगला गल्पका अनुवाद ।

## विविध प्रसङ्ग ।

### १ भद्रबाहु-संहिताकी परीक्षा ।

गत चौथे पांचवें अंकमें हमने सूचित किया था कि हितैषीके पाठकोंके सुपरिचित लेखक श्रीयुत बाबू जुगलकिशोरजी मुस्तार 'भद्र-बाहु-संहिता' की परीक्षा लिखनेवाले हैं। खुशीकी बात है कि परीक्षाका लिखना शुरू हो चुका है और उसका पहला लेख इस अंकके प्रारंभमें ही प्रकाशित किया जाता है। हम अपने पाठकोंसे आग्रहपूर्वक प्रेरणा करते हैं कि वे इस लेखको अवश्य पढ़ें और अच्छी तरह विचार पूर्वक पढ़ें। लेख कितने परिश्रमसे लिखा गया है और इसके लिए लेखक महाशयको कितनी कठिन तपस्या करनी पड़ी है, इसका अनुभव विचारशील पाठक स्वयं ही कर लेंगे। तो भी इतना कहे बिना नहीं रहा जाता कि जबसे जैनसमाजमें अन्ध श्रद्धाका साम्राज्य हुआ है, और लोग सच्चे झूठकी परीक्षा करना भूल गये हैं, तबसे अबतक इस प्रकारका शायद एक भी प्रयत्न नहीं हुआ है। जैनसाहित्यके इतिहासमें यह प्रयत्न अपना प्रभाव सदाके लिए छोड़ जायगा। हमारा विश्वास है कि ये ग्रन्थपरीक्षासम्बन्धी लेख लोगोंको केवल परीक्षापट्ट ही न बना देंगे; किन्तु यह भी सिख-लायेंगे कि स्वाध्याय करना—ग्रन्थोंका बारीक दृष्टिसे अध्ययन करना—कैसे कहते हैं और इसमें कितने अधिक परिश्रमकी तथा कितने अधिक साधनोंकी आवश्यकता होती है।

### २ दिगम्बर-जैनमहासभाका सुधार ।

हमारे एक मित्र लिखते हैं कि "महासभाके सुधारकी कुछ लोगोंको विशेष करके जैनमित्रके

सम्पादक महाशयको बहुत चिन्ता रहती है जान पड़ता है कि ये सब लोग महासभाके सुधारको कोई बहुत बड़ा काम समझते हैं। पर वास्तवमें महासभाकी जो वर्तमान दशा है उसके देखते हुए उसका सुधार करना बहुत ही सहज है। दो चार उपचारोंसे ही उसका सुधार हो सकता है। सबसे पहला और अच्छा उपाय यह है कि जैनगजट बन्द कर दिया जाय। बेचारा बहुत समयसे कष्ट भोग रहा है, उसका जीना मरना बराबर हो रहा है, जो कोई उसे इस भवयंत्रणासे मुक्त कर देगा उसे बड़ा ही पुण्य होगा। उसके समाधि लाभ करनेसे महासभाके मेम्बरोंका एक बड़ा भारी बोझा घट जायगा। दूसरा उपाय यह है कि महासभाका दफ्तर बिलकुल उठा दिया जाय और महामंत्री साह-बके अनन्त आशीर्वाद ग्रहण किये जायें। दफ्तरके उठ जानेसे जैनसमाजकी कोई हानि न होगी, उसका कोई भी काम रुक न रहेगा; यदि कोई चाहे तो इस बातकी हम गारंटी लिख दे सकते हैं। तीसरा उपाय यह है कि महाविद्यालय मथुरासे उठाकर फिर काशी भेज दिया जाय और उसका फण्ड स्याद्वादपाठशालामें शामिल कर दिया जाय। यदि यह पसन्द न हो, तो विद्यालय बन्द ही कर दिया जाय और जो रुपया है वह किसी तीर्थके मुकद्दमेंमें खर्च कर दिया जाय। यदि मेरी ये दोनों ही रायें कुतर्क समझी जायें, तो विद्यालयकी रकम युद्धफण्डमें दे दी जाय और इस बातकी आशा रखी जाय कि महासभाके दो चार अधिकारियोंको रायबहादुरीका खिताब

दिया जायगा । यह याद रखना चाहिए कि ये तीनों ही उपाय जुदा जुदा फलदायक न होंगे; दर्शन-ज्ञान-चारित्र्यके समान इन तीनोंकी एकतासे ही महासभाका सुधार होगा । उसको महा समाधि प्राप्त हो जायगी और इससे बढ़कर उसका कोई सुधार हो नहीं सकता । जो लोग इससे विरुद्ध उपाय बतलाते हैं, वे उसे संसारारण्यमें भटकाना चाहते हैं । सम्पादक महाशय, आशा है कि आप मेरे इन सुधारके नये आविष्कारोंको अपने पत्रमें अवश्य प्रकाशित कर देंगे ।” इस पर ठीका टिप्पणी व्यर्थ है ।

### ३ भारत-जैन-महामण्डलका सुधार ।

ब्रह्मचारीजी महासभाके समान भारत-जैन-महामण्डलका भी सुधार चाहते हैं । गत आसोज सुदी २ के जैनमित्रमें आपने ‘जैन-यंगमेन्स एसोसियेशन’ का पुराना इतिहास प्रकाशित करनेका पारिश्रम उठाया है और यह सिद्ध करनेकी कोशिश की है कि शुरू शुरूमें उसका उद्देश्य दिगम्बरजैनसमाजकी उन्नति करनेका था । संभव है कि उसका पहले यही उद्देश्य रहा हो, परन्तु ब्रह्मचारीजीने उसके जो २५ अक्टूबर सन् १८९९ को निश्चित किये हुए ४ उद्देश्य प्रकाशित किये हैं तथा सन् १९००के जो ३ प्रस्ताव दिये हैं, उनसे तो यह कदापि सिद्ध नहीं होता कि एसोसियेशन दिगम्बरजैन-समाजके लिए ही स्थापित हुआ था, यद्यपि उस समय उसके सारे मेम्बर दिगंबरी ही थे । उद्देश्योंमें या प्रस्तावोंमें एक भी शब्द ऐसा नहीं है जो उसके दिगम्बरीपनको सिद्ध करता हो । और यदि थोड़ी देरके लिए यह भी मान लिया जाय कि पहले यह मण्डल शुद्ध दिगम्बरी ही था, तो भी इससे क्या यह सिद्ध हो गया कि उसका दिगम्बर-श्वेताम्बर-स्थानकवासी इन तीनों जैन सम्प्रदायोंकी उन्नति करनेका वर्त-

मान उद्देश्य अच्छा नहीं है ? अथवा किसी सभा या मण्डलको अपना संकुचित कार्य-क्षेत्र बढ़ानेका अधिकार नहीं है ? एसोसियेशन या मण्डलके नामके साथ व्यापक ‘जैन’ शब्द लगा हुआ है, न कि दिगम्बर श्वेताम्बर या स्थानकवासी । अतः उसके उद्देश्य किसी एक ही सम्प्रदायमें कैद नहीं हो सकते । यह संभव है कि उसकी स्थापनाके समयकी परिस्थिति ऐसी हो कि वह केवल दिगम्बरसमाजमें ही काम कर सकता हो, पर पीछे वह दशा नहीं रही यह देखकर मण्डलने अपना कार्यक्षेत्र बढ़ाना उचित समझा हो । यदि उसने अपना कार्यक्षेत्र बढ़ाया तो कुछ अनुचित नहीं किया । उसके नवीन उद्देश्यकी सफलता न होनेका कारण पुराने उद्देश्यका मारा जाना नहीं है; किन्तु काम करनेवालोंकी कमी है । भारतकी तमाम जातियोंकी अपेक्षा जैन जाति इस विषयमें सबसे अधिक अभागिनी है कि उसके प्रायः सभी उच्चशिक्षाप्राप्त ग्रेज्युएट-जिनकी एक अच्छी संख्या है- न अपने धर्म और समाजसे ही कुछ सहानुभूति रखते हैं और न देशसे । राजनीतिक और सामाजिक दोनों ही क्षेत्र उनसे खाली पड़े हैं । वास्तवमें उनके प्रेम और उत्साहके अभावसे ही मण्डलको सफलता नहीं मिल रही है । यदि दश बीस शिक्षित युवक अब भी कमर कसके खड़े हो जायँ, तो मण्डल वह काम कर सकता है जो अबतक किसी भी संस्थाने नहीं किया है । हम ब्रह्मचारीजीसे पूछते हैं कि आपकी महासभाका तो कोई भी उद्देश्य नहीं मारा गया है, फिर उसे सफलता क्यों नहीं हो रही है ? उसकी दुर्दशाका भी क्या यही कारण नहीं है कि उसमें उत्साही काम करनेवाले नहीं हैं ?

भारतजैनमहामण्डल कुछ काम कर रहा है या नहीं, यह दूसरी बात है, पर इसमें

सन्देह नहीं कि उसका यह उद्देश्य कि तीनों सम्प्रदायोंमें पारस्परिक सहानुभूति बढ़ाई जाय और एकताका प्रचार किया जाय, बहुत ही अच्छा है। उसका यह उद्देश्य कट्टरसे कट्टर दिग्म्बरी श्वेताम्बरी या स्थानकवासीको भी बुरा नहीं लग सकता। सहानुभूति या एकताका मतलब यह नहीं है कि तीनों मिलकर एक कर दिये जायँ, यह कमी हो भी नहीं सकता। मतलब यह है कि तीनोंमें जो पारस्परिक द्वेष बढ़ रहा है, वह मिट जाय और जो काम एक साथ मिलकर किये जा सकते हैं वे किये जायँ। शिक्षाप्रचार आदिके ऐसे एक नहीं सैकड़ों कार्य हैं जो जुदे जुदे धर्मविश्वासोंको रखकर भी एक साथ किये जा सकते हैं। एक मण्डल ही ऐसी संस्था है जो इस उदार उद्देश्यको समाने रखकर काम कर सकती है। यदि वह काम करे तो जैनजातिके लिए एक सबसे बढ़ कर गौरवकी चीज बन सकती है। ब्रह्मचारीजीको उसे 'दिग्म्बर संस्था' बनानेकी कोशिश न करना चाहिए। यदि अँगरेजी पढ़े हुए लोगोंकी दिग्म्बर संस्थाकी उन्हें आवश्यकता ही हो तो वे 'श्वेताम्बर ग्रेज्युएट एसोसियेशन' के समान एक जुदी 'दिग्म्बर जैन ग्रेज्युएट एसोसियेशन' स्थापित कर सकते हैं और उससे अपनी इच्छानुसार केवल दिग्म्बरजैन समाजकी ही उन्नति करा सकते हैं। जिसतरह जुदे जुदे सम्प्रदायों और जातियोंकी जुदी जुदी संस्थाओंकी जरूरत है, उसी तरह ऐसी संस्थाओंकी भी जरूरत है जो कई सम्प्रदायों और जातियोंमें प्रेम और सहानुभूति बढ़ानेका संदेश सुनाती हों। काम सब ओरसे होना चाहिए। जिस तरह दिग्म्बर जैनसमाजकी और और बातोंमें उन्नति करनेकी आवश्यकता है, उसी प्रकार उसे यह सिखलानेकी भी जरूरत है कि वह

अपनं श्वेताम्बरी-स्थानकवासीभाइयोंसे द्वेष न करके उनके साथ प्रेम और सहानुभूति रखे।

### ४ स्वयंवर पद्धतिसे विवाह।

बाबू अवधविहारीलालजी, मास्टर जिला स्कूल बदायूँ, अपनी कन्याका विवाह—जिसकी अवस्था १४ वर्षकी है—आगामी वर्ष स्वयंवर पद्धतिसे करना चाहते हैं। वे जातिके श्रीवास्तव कायस्थ हैं। किसी भी शाखाके कायस्थ-युवक—जिनकी उम्र २०—२५ वर्षकी हो और जो कमसे कम मैट्रिक पास हों—इस स्वयंवरमें उपास्थित हो सकते हैं। कन्या सुन्दरी, बुद्धिमती, संस्कृतकी प्रथम परीक्षा पास, और गृहकार्यनिपुणा है। आगत युवकोंमेंसे वह जिसे पसन्द करेगी उसके गलेमें वरमाला डालेगी और फिर उसीके साथ उसका विवाह हो जायगा। पाणिप्रार्थियोंको कन्याके पितासे पत्रव्यवहार करना चाहिए। इत्यादि। इस समाचारको प्रकाशित करके सहयोगी जातिप्रबोधक लिखता है—  
“ इस संवादसे हमको अपार हर्ष हुआ और हम उस दिनकी प्रतीक्षा करते हैं कि जब हमारी जातिमें भी फिरसे इस प्राचीन रीतिका रिवाज हो। गार्हस्थ्य सुखसे जो आजकल प्रायः लोग वंचित हैं, उसका मूल कारण यह है कि पति-पत्नीका स्वभाव नहीं मिलता।.....जबतक दोनोंका स्वभाव नहीं मिलता, गृहस्थकी गाड़ी ठीक नहीं चल सकती और दोनोंका स्वभाव उसी अवस्थामें मिल सकता है कि जब दोनों एक दूसरेको जानते हों और उन्होंने अपनी हार्दिक इच्छासे एक दूसरेसे विवाह किया हो। माता पिता द्वारा निश्चित किया हुआ सम्बन्ध सुख और शान्तिके स्थानमें प्रायः अशान्तिका कारण होता है। कारण कि सम्बन्ध करते समय उनकी दृष्टि एकदेशी होती है। सब बातोंकी ओर उनका ध्यान नहीं जाता।” स्वयंवर हमारे

देशकी पुरानी प्रथा है, उसकी प्रसंसाका प्रभाव हमारे चित्तोंपर जम रहा है । इस लिए उसके उद्धारकी बात सुनकर आनन्द होना ही चाहिए; परन्तु विचारपूर्वक देखनेसे मालूम होगा कि माता पिता द्वारा किये हुए विवाहोंमें जिस स्वभाव न मिलनेकी शिकायत सहयोगी करता है, उसकी संभावना इस स्वयंवरमें भी रहेगी । स्वयंवर सभामें वह लड़की अधिकसे अधिक यह देख सकती है कि वर सुन्दर है, हृष्ट पुष्ट है, शिक्षित है और सुभाषी है । स्वभावकी परख बिना कुछ दिनों तक साथ रहे कैसे होगी ? और यह बिल्कुल सच है कि स्वभाव मिले बिना सुन्दरसे सुन्दर और हृष्टपुष्ट पुरुषसे भी स्त्रीको सुख नहीं मिल सकता है । चतुर और विचारशील मातापिता इस प्रकारके स्वयंवरके बिना भी इससे कहीं अच्छा चुनाव कर सकते हैं । वे पढ़ने-लिखनेकी योग्यता, सुन्दरता और स्वस्थताके सिवाय थोड़ेसे परिश्रमसे वरकी चाल चलनका भी पता लगा सकते हैं और यह भी जान सकते हैं कि उनकी लड़की उसे पसन्द करती है या नहीं । पर उक्त स्वयंवरमें इस प्रकारकी सावधानी होना कठिन है । न जाने कहाँ कहाँके अपारिचित युवक आवेंगे जिनकी चालचलन और स्वभाव आदिके विषयमें कुछ भी ज्ञान न होगा और लड़की अपनी १४ वर्षकी छोटीसी अनुभवहीन एकदेशी बुद्धिके द्वारा उनमेंसे किसी एकके हाथमें अपने जीवनकी बागडोर पकड़ा देगी । कौन कह सकता है कि वह इस युवकको पाकर सचमुच ही सुखी होगी ? पूर्व कालके स्वयंवरोंसे इस स्वयंवरका मिलान नहीं हो सकता । द्रौपदी, सीता आदिके स्वयंवरोंमें कन्याओंकी इच्छानुसार शर्तें की जाती थीं कि जो लक्ष्य वेध करेगा या धनुष तोड़ेगा, उसीके गलेमें वरमाला पड़ेगी । द्रौपदी और सीताकी दृष्टिमें

पतिका आदर्श गुण शौर्य था, बल था और यह एक ही गुण उनकी दृष्टिमें उनके सुखी होनेके लिए काफी था । इस स्वयंवरमें भी कन्या जिस गुणको विशेषतासे पसन्द करती हो उस गुणमें जो युवक श्रेष्ठ समझा जायगा, वही वरमालाका अधिकारी होगा, इस प्रकारकी शर्त रहना चाहिए । अस्तु । हमारी समझमें हमारा लक्ष्य स्वयंवर या माता पिता द्वारा चुना हुआ वर और प्राचीन पद्धति या नवीन पद्धति न होकर यह होना चाहिए कि जिस पद्धतिसे योग्य वर और योग्य कन्याओंका दोनोंकी सम्मार्तिके अनुसार, सुखकर सम्बन्ध हो सके वही पद्धति सबसे अच्छी है और उसीका प्रचार होना चाहिए ।

#### ५ थियोसोफिकल सुसाइटीका कार्य ।

इस सुसाइटीकी स्थापना सन् १८७५ में हुई थी । सारी दुनिया भरमें इसके अनुयायी मौजूद हैं यद्यपि उनकी संख्या कम है । सारी दुनियाके थियोसोफिस्टोंकी संख्या २५६९६ है और भारतवासी थियोसोफिस्टोंकी ५९३६ । इतने कम होकर भी ये लोग काम खूब कर रहे हैं । काशीका सेन्ट्रल हिन्दू कालेज थियोसोफिकल सुसाइटीके ही परिश्रमका फल था जो अब हिन्दू विश्व-विद्यालयको दे दिया गया है । इसके सिवाय उसके दो कालेज और हैं,—एक लड़कोंका अडियारमें और दूसरा लड़कियोंका काशीमें । हाई स्कूलोंकी संख्या ८ है । ८ प्राइमरीस्कूल, १ मिडिल स्कूल और १ संस्कृतस्कूल भी सुसाइटी चलाती है । शिक्षाके सिवाय धार्मिक, सामाजिक और राजनीतिक क्षेत्रोंमें भी सुसाइटीने आशासे अधिक कार्य किया है । हमारे जैनसमाजके शिक्षितोंको सुसाइटीके मेम्बरोंकी थोड़ीसी संख्या और उसके कामके साथ अपनी संख्या और अपने कामोंका मिलान करके देखना चाहिए ।

## ६ आर्यसमाजके प्लेटफार्मपर जैनधर्मका व्याख्यान ।

गुरुकुल कांगड़ीके गतवार्षिकोत्सवके समय आर्यसमाजके प्लेटफार्म पर स्याद्वादपाठशाला काशीके धर्माध्यापक पण्डित उमरावसिंहजीका एक व्याख्यान हुआ था जिसमें पण्डितजीने जैनधर्मके अनुसार ईश्वरका स्वरूप निरूपण किया था। जैनमित्रके सम्पादक महाशयने इस विषयमें पण्डितजीकी बहुत प्रशंसा की है और उनके साहसको बहुत बड़ा बतलाया है। लिखा है कि “इतना बड़ा साहसका काम कि आर्यसमाजियोंके जल्सेमें उनके विरुद्ध सिद्धान्तका विवेचन सबको सुनाया, पर अति दुःखकी बात है कि किसी भी जैनपत्रने उनके इस कार्यकी सराहना नहीं की और न उनके दिलको बढ़ाया।” पण्डितजीका व्याख्यान यदि अच्छा हुआ है, यदि उसमें ऐसी बातें कही गई हैं जो कुछ विशेषता रखती हैं तो अवश्य ही उनकी प्रशंसा होनी चाहिए; पर केवल इसी लिए कि उन्होंने आर्यसमाजके प्लेट फार्म पर व्याख्यान दिया, प्रशंसाका कार्य हो गया, यह हम नहीं मान सकते। हमारी समझमें यह बात नहीं आई कि इसमें पण्डितजीका साहस क्या हुआ। आर्यसमाज प्रतिवर्ष अपने जल्सोंपर जुदा जुदा धर्मोंके विद्वानोंको निमंत्रण देकर बुलाता है और अपने प्लेट फार्म पर शौकसे उनके व्याख्यान कराता है। वह समझता है कि इससे हमारे ज्ञानकी वृद्धि होगी। उसे यह डर नहीं रहता है कि विधर्मियोंके व्याख्यान हमें अपने धर्ममें शिथिल कर देंगे। पण्डितजी भी इसी तरह जैनधर्मकी कुछ बातें सुनानेके लिए निमंत्रित किये गये होंगे और उन्होंने अपनी बुद्धिके अनुसार अपने विषयका प्रतिपादन किया होगा। यह कोई वादविवादका या शास्त्रार्थ आदिका काम नहीं था, जिसमें उनके साहसकी प्रशंसा की जाय। हमारी समझमें तो इस समाचारको पढ़कर हमें आर्यसमाजके साहसकी और उसकी उदार नीतिकी प्रशंसा करनी चाहिए। एक तो

हम लोग हैं जिनके प्लेटफार्मोंपर—दूसरे धर्मवालोंके तो क्या अपने ही धर्मके माननवालोंके—यदि वे अपनेसे जरा भी विरुद्ध विचार रखते हैं—व्याख्यान नहीं हो सकते हैं और एक वे हैं जो अपनी सभाओंमें दूसरे विद्वानोंको आदरपूर्वक बुलाते हैं और उनके विचारोंसे लाभ उठानेका प्रयत्न करते हैं।

## ७ एक जैनविधवाके कन्याजन्म ।

बारामती (पूना) के संभवतः हूमडजातीय शाह माणिकचन्द्र बालचन्द्रजी जैनकी भावजके—जो दशवर्षसे विधवा है—हाल ही एक लड़की उत्पन्न हुई है। जिस समय उक्त विधवा गर्भवती थी, उस समय किसी सज्जनने इसकी सूचना कोर्टको दे दी थी, इस लिए कोर्टने उससे जामिन ले ली थी कि वह किसी प्रकार गर्भपात न कर डाले। इससे बेचारी लड़कीकी जान बच गई, वह सुखपूर्वक प्रसूत हुई। सहयोगी जैनबोधक इस विषयमें बड़े ही मजेकी बात लिखता है कि बारामतीके पंच इस बातकी चिन्तामें है कि यदि कोई आदमी इस बातको कहे कि उक्त विधवाने अपराध किया है तो हम उस विधवाको जातिसे स्वारिज करें या उसे दण्ड दें; परन्तु भयके मारे कोई तैयार ही नहीं होता है और बेचारे पंच यह सब जानते हैं कि जो दश वर्षसे विधवा है, उसके बिना पराये पतिके सहवास सम्बन्धके सन्तान नहीं हो सकती है और सन्तान प्रत्यक्ष है; पर क्या करें, बिना किसी कहनेवालेके तैयार हुए कहीं न्याय हो सकता है? बलिहारी है! इन्हीं पंचोंकी बुद्धि और न्यायपटुताके भरोसे हम कहा करते हैं कि हमारी ‘पंचायत संस्था’ बहुत अच्छी है। उसकी न्यायशीलताके कारण हमारे यहाँ पाप नहीं होते, अन्याय नहीं होते और हमारी रगोंमें विशुद्ध रक्तका प्रवाह हो रहा है। सच तो यह है कि हमारी और और संस्थाओंके समान यह पंचायत—संस्था भी बिल्कुल सड़ गई है। जब तक हम इसका नये सिरेसे फिर संस्कार नहीं करेंगे तब तक इससे कोई लाभ नहीं हो सकता।



## तीर्थोंके झगड़े मिटानेका आन्दोलन ।

श्रीयुत सम्पादक महाशय—‘ जैनहितैषी, ’

आपके पाठकोंको स्मरण होगा कि ‘ हितैषी ’ के गतांकमें-ठीक क्षमावनीके पवित्र दिनको-एक समय जैनसमाजके कल्याणकारी आन्दोलनका प्रारंभ किया गया था । उक्त अंकमें एक अपील—जिसका कि शीर्षक ‘ तीर्थोंके झगड़े मिटाइए ’ था—की गई थी और उसकी कई हजार प्रतियाँ हिन्दी और गुजराती भाषामें जगह जगह पहुँचाई गई थीं । इसके सिवाय पत्रव्यवहारद्वारा, पर्यटन द्वारा और मुलाकात आदिके द्वारा भी इस विषयमें जो कुछ प्रयत्न बन सकता था वह किया गया था, किया जा रहा है और आगे भी किया जायगा । मेरी समझमें किसी भी अपीलकी या आन्दोलनकी सफलताकी आशा तब की जानी चाहिए जब दूसरी ओरसे भी उसकी प्रतिध्वनि उठे—उससे मिलती हुई या उससे विरुद्ध आवाज सुनाई पड़े । यह जानकर मुझे बहुत सन्तोष हुआ है और मेरे उत्साहमें सब ही वृद्धि हुई है कि मेरी उक्त अपीलकी प्रतिध्वनि एक तरफसे नहीं किन्तु दो तरफसे उठी है । एक ओरसे तो मुझे दिग्म्बर-श्वेताम्बर धनिकों, लेखकों, व्याख्याताओं और साधारण पुरुषोंके सैकड़ों सहानुभूति-दर्शक पत्र और कितने ही त्यागी महात्मा और मुनियोंकी बिना माँगी सहानुभूति प्राप्त हुई है और दूसरी ओरसे एक विरुद्ध पक्ष भी मेरे सम्मुख कमर कसके खड़ा हुआ है । इसकी जरूरत भी थी । क्योंकि सत्यका यथार्थस्वरूप फैलानेमें विरुद्ध पक्ष बहुत बड़ा सहायक होता है । आपको मालूम हुआ होगा कि भारत-

वर्षीय दिग्म्बरजैनतार्थक्षेत्रकमेटीके महामंत्री लाला प्रभुदयालजीने एक पेम्फलेट मेरी अपीलके विरुद्ध हाल ही प्रकाशित किया है । यह लेख मैंने उसीको पढ़कर लिखा है । मुझे आशा है कि आप इसे इसी अंकमें प्रकाशित करनेका प्रयत्न करेंगे ।

[ यद्यपि निम्नलिखित लेख दिग्म्बरी भाइयों और इसके बादका दूसरा लेख \* श्वेताम्बरी भाइयोंको उद्देश्य करके लिखा गया है,—तथापि दोनों ही लेख दिग्म्बर-श्वेताम्बर दोनों ही सम्प्रदायके भाइयोंके लिए एक सीखे उपयोगी हैं । दूसरा लेख श्वेताम्बर ‘ जैनकान्फरेंस हेरल्ड ’ के खास अंकमें प्रकाशित हुआ है और हेरल्डके विद्वान् सम्पादकने एक स्वतन्त्र नोट द्वारा उसका अनुमोदन किया है । ]

### अज्ञानताके मायाजालसे बचो ।

धर्म, सत्य, सम्यक्त्व, ये शब्द कितने मधुर हैं । पृथिवीके प्रत्येक मनुष्यको इन तत्त्वोंकी आवश्यकता है और इन्हींकी खोज तथा प्राप्तिके लिए प्रत्येक मनुष्य व्याकुल रहता है । परन्तु प्रकृतिका यह एक नियम है कि जो चीज जितनी ही अधिक कीमती होगी, उसकी प्राप्तिमें कठिनाइयाँ भी उतनी ही अधिक होंगी । कोई भी कीमती चीज अनायास ही, दुःख सहन किये बिना, प्राप्त नहीं होती । तदनुसार धर्म, सत्य और सम्यक्त्व ये सहज ही प्राप्त होनेवाली

\* दूसरा लेख आगामी अंकमें प्रकाशित किया जायगा । स्थानाभावके कारण हम उसे इस अंकमें प्रकट न कर सके ।—सम्पादक ।

वस्तुयें नहीं हैं। अधर्म, असत्य और मिथ्यात्व नामके तत्त्व सुन्दर आकर्षकरूप धारण करके, प्रमादी मनुष्यको भुला देते हैं और उसे युक्ति-प्रयुक्तियोंसे अपने वशमें करके, अपना गुलाम बनाके, उस पर अत्याचार करते हैं। मनुष्योंका बहुत बड़ा भाग इसी अवस्थामें पड़ा हुआ है। बड़े भारी खेदकी बात यह है कि जो मनुष्य अधर्म और असत्यकी गुलामी चिरकालसे करता आ रहा है, वह चाहे जितना ही ख्वाब क्यों न हो जाय, तो भी, बहुत समयके परिचयके कारण, इन 'खूबसूरत बला' ओंको ही अपनी इष्टदेवी मान लेता है और इन फँसानेवाली बलाओंको ही 'सत्यकी रानी' माननेके लिए औरोंको भी समझानेका यत्न करता है। ऐसी परिस्थितिमें, सत्यकी देवीको खोज निकालनेका काम, बहुत ही दुष्कर हो जाता है। उसको पानेका मार्ग है भी बहुत कठिन, ऐसे मनुष्य उस पर चल ही नहीं सकते हैं जो पग पग पर लुभा जाते हों या उत्तेजित हो जाते हों। सत्यदेवी अपने उम्मेदवारोंको उच्च चारित्रिकी कठिन कसौटी पर कसती है, दुःख देती है और दुःख सहन करनेपर जो उम्मेदवार उच्च चारित्र (क्षमा, दया, नम्रता आदि) को सम्पूर्ण रीतिसे, हरतरहका त्याग करके, पाल सकता है उसे ही दर्शन देती है।

धर्मका आधार चारित्र अथवा सदाचार है। कषायोंको दबाये बिना सदाचार नहीं बन सकता और जब तक कषायें मन्द नहीं हुई हैं तबतक आत्माका कल्याण नहीं हो सकता। इसलिए धर्मका प्रथम उपदेश यह है कि कषायोंको दबाओ, कषायोंको मन्द करो। परन्तु क्रोध, वैर आदि, जो कषायोंका परिवार है, वह इतना बलवान् है कि मनुष्य उससे डर जाता है और शीघ्र ही उनके वशीभूत हो

जाता है। केवल वशीभूत ही नहीं हो जाता है किन्तु अपनी इस निर्बलताको छुपानेके लिए उस कषाय-परिवारको भी सुन्दर मोहक स्वरूप और प्रभाव-शाली नाम दे देता है और यह बतलाना चाहता है कि "मैं निर्बल नहीं हूँ, सबल हूँ, मैं कषायके वशीभूत थोड़े ही हुआ हूँ किन्तु मैंने धर्मपालनके लिए कषायको केवल एक अस्त्र बना लिया है!" वह कहता है कि "यह मैं मानता हूँ कि क्रोध करना, लड़ना, फूट डालना, वैर निकालना, आदि सब बातें पाप हैं; परन्तु मैं तो सच्चे धर्मकी रक्षाके लिए, एक हथियारके तौरपर इन वृत्तियोंसे काम लेता हूँ। इस लिए इसमें कोई हानि नहीं है। इससे तो मुझे उल्टा धर्म-रक्षाका महान् पुण्य-बन्ध होगा। इस लिए हे भाइयो! तुम भी मेरा मार्ग धर लो और कषाय-सेवनमें लग जाओ। प्यारे भोले भाइयो! तुम्हारे आगे कुछ थोड़ेसे लोग दयाकी, शान्तिकी, सम-झौतेकी, क्षमाकी, उदारताकी, भलमंसाहतकी और एकताकी मीठी मीठी बातें कर रहे हैं, पर सावधान! तुम इनसे बचे रहना, नहीं तो ये तुम्हें बिल्कुल पुरुषत्वहीन बना देंगे। ये क्षमा दया आदि सब गुण केवलज्ञानियों, तीर्थंकरों और मुनिजनोंके लिए ही हैं; हम लोग तो पंच-मकालके मनुष्य हैं, इस लिए हमारे लिए तो लड़ना, झगड़ना, ईर्ष्या करना, भड़काना, भाई-भाईका अहित चाहना, जैसे बने तैसे सर्वोपरि बनना, धर्मके नामसे युद्ध करना, 'रक्षा' के लिए 'हिंसा' करना, झूठी गवाहियाँ तैयार करना, अपनी वैरवृत्तिको तृप्त करनेके लिए अज्ञानी जनोंको उत्तेजित करना और उनकी अज्ञानतासे लाभ उठाकर उनके रूपयोंसे युद्ध करना- 'पराये पैसोंसे दिवाली' मनाना, यही धर्म पानेकी सार्थकता है।

खेदकी बात है कि मिथ्यात्वका यह उपदेश

अज्ञानी जनों पर बहुत ही जल्दी असर कर जाता है। क्योंकि जनसाधारणकी सदसद्विवेकबुद्धि या अच्छे बुरेको पहचान सकनेकी शक्ति मन्द होती है; वे आजकलके 'धर्मात्मा' कहलानेवाले लोगोंके मुँहमेंसे निकले हुए शब्दोंको ही सत्य मान लेते हैं। वे यह नहीं जानते कि अपना हित मनुष्य आप ही कर सकता है; जब तक अपनी हिताहित समझनेकी बुद्धिका विकाश नहीं होगा तब तक मिथ्यात्वके मोह उपजानेवाले प्रपंचोंसे उसकी रक्षा नहीं हो सकेगी।

इसी कारण शास्त्रकार कहते हैं कि पंचम-कालमें सम्यग्ज्ञान या सत्यज्ञानकी प्राप्ति अति-शय कठिन है। एक तो मनुष्यमें अपना हिताहित सोच सकनेकी यों ही कमी है, पराये उपदेशों पर विश्वास रखके ठगाये जानेका स्वभाव ही विशेष है और दूसरे मिथ्यात्वरूपी शैतानका बल इतना बढ़ा चढ़ा हुआ है कि उसने अपनी लुभानेवाली-आकर्षक-जनसाधारणको मोहित कर डालनेकी-कलाका जाल लगभग सारे संसार-में फैला रक्खा है।

तो भी, जिन्हें अपने धर्मकी-अपने आत्माके रक्षणकी सचमुच ही चिन्ता है, उन्हें निराश न होना चाहिए। सत्यका कुछ लोप नहीं हो गया है; केवल उसके ऊपर स्वार्थसाधु अज्ञानी या हठी लोगोंने परदा डाल रक्खा है। इस पर-देको अपनी बुद्धिरूपी पैनी लुरीसे काट डालनेकी जरूरत है। जो लोग ऐसा करेंगे उन्हें सत्य-देवीके-धर्मके-दर्शन अवश्य होंगे। 'मार्ग एक ही है, हाँ, सचमुच एक ही है और वह यह है कि वीतराग अर्थात् रागद्वेषरहित महा-पुरुषोंके उपदेश किये हुए शास्त्र आप स्वयं ही वाँचिए, स्वयं ही समझिए और जो रागद्वेषका उप-देश देते हों, उनका उपदेश सुननेसे साफ इँकार कर दीजिए। वीतरागता प्राप्त करना ही प्रत्येक मनु-

ष्यका लक्ष्यबिन्दु होना चाहिए और मनुष्य, चाहे वह संसारी हो चाहे गृहत्यागी, उसे रागद्वेष कम करते जानेका ही उद्यम करते रहना चाहिए। 'त्यागियोंको रागद्वेषसे दूर रहना चाहिए और संसारियोंको रागद्वेषके कीचड़में फँसना चाहिए,' ऐसे महा अनर्थकारी उपदेशोंसे बचिए! यदि तुम इसे सुनोगे तो याद रखो फँस जाओगे। इसलिए साहसी बनो, आत्मबलको स्फुरायमान करो, मिथ्यात्वसे डरो, और रागद्वेष बढ़ानेवाली तथा धर्मके नामसे झगड़ा फसाद करनेवाली फिलासफी बतलानेवालोंसे दूर रहो। यदि तुम ज्ञानका प्रकाश चाहते हो, तो वह अज्ञानके अन्धकारमें जानेसे नहीं मिलेगा। वीतरागता या मुक्ति चाहते हो, तो वह लड़ाई-झगड़ों और द्वेष-वैरोमें कभी नहीं मिलनेकी। जो दुनियादारीमें लाचार होकर रागद्वेष करते हों, उन्हें भी धर्मके कार्योंमें तो रागद्वेषके दूर करनेका ही उद्योग करना चाहिए कि जिससे धीरे धीरे समभाव-का अभ्यास बढ़ता रहे और समय आने पर दुनियादारीमें भी रागद्वेषरहित आचरण हो सके। भाइयो! मुक्तिके इच्छुको! यदि तुम तत्त्वज्ञानकी गहरी बातें नहीं समझ सकते हो तो न सही; पर रागद्वेषको कम करनेका अभ्यास डालने की ओर अवश्य ध्यान रखो—यदि केवल इसी एक बातको स्मरण रखोगे तो तुममें सारे सदुण और सारे ज्ञान एक न एक दिन जागरित हुए बिना न रहेंगे।

जैनसमाजमें तीर्थोंके सम्बन्धमें जो झगड़े चल रहे हैं-उनको शान्त करनेके लिए गत पर्यु-षण पर्वके समय, कितने ही दिग्गम्बर-श्वेताम्बर सज्जनोंकी सहानुभूतिसे एक निर्दोष आन्दोलन इस लेखकने उठाया था, जिसका स्वरूप हितै-षीके गत अंकमें विस्तारके साथ समझाया गया है और इस ढंगसे समझाया है कि उसमें किसी

प्रकारका भ्रम या सन्देह नहीं रह सकता । उक्त लेखमें यह कहीं भी नहीं लिखा गया है कि अमुक पर्वतराज पर दिगम्बर भाइयोंको अपनी पद्धत्यनुसार पूजन करनेका हक नहीं मिलना चाहिए । ऐसी सलाह भी नहीं दी गई है कि उन्हें अपना हक छोड़ देना चाहिए । सम्प्रेदशिक्षरके या अन्य किसी तीर्थके मुकद्दमेमें दिगम्बरियोंका दोष है, इस प्रकारका एक शब्द या इशारा भी लेखभरमें नहीं है । दिगम्बरसम्प्रदायको छोड़ दो, या दिगम्बर पूजाविधिको बदल डालो, इस प्रकारकी मूर्खतापूर्ण सूचना भी मैंने नहीं की है । इस प्रकारके खयालोंको मैं पसन्द भी नहीं करता हूँ । तो भी लाला प्रभुदयालजीने या उनके नामसे किसी और 'धर्मात्मा' ने एक पेम्फलेटके द्वारा दिगम्बरी भाइयोंका भड़कानेका प्रयत्न किया है और समय दिगम्बर-श्वेताम्बर समाजकी निःस्वार्थ सेवा करनेके लिए उद्यत हुए सज्जनोंपर—जिनकी मेरे लेखमें सहियाँ हैं—अनेक दोष लगाये हैं । इतना ही नहीं, लालाजीने दिगम्बर भाइयोंको यह सिखापन भी दिया है कि लड़नेमें ही धर्म है, अच्छी तरहसे लड़ो; खूब लड़ो, शक्ति भर धन एकठा करके लड़ो और जो लोग लड़नेके बदले शान्तिके साथ न्याय करानेकी सलाह देते हैं उनके साथ भी लड़ो ! पर मैं इसमें बेचारे लालाजीको दोष नहीं दूँगा । इस समय संसारभरमें युद्धकी हवा बह रही है और जहाँ तहाँ “ लड़ो—मारो—काटो, बदला लो, मिट्टीमें मिला दो ” यही शब्द सुन पड़ते हैं । अतः जान पड़ता है कि इसी प्रबल भावनाका प्रभाव जैन जैसी शान्त, रागद्वेषको नष्ट करनेमें ही धर्म माननेवाली और शत्रु पर क्रोध न करनेकी टेव रखनेवाली कौम पर भी पड़ गया

है । इसीके प्रभावसे ही हमारे शान्तिप्रचारक आन्दोलनके सामने लालाजी या उनके लेखक कमर कसके खड़े हो गये हैं और करोड़ों पंचेन्द्रिय जीवोंकी हिंसा करनेवाले वर्तमान यूरोपीय युद्धकी स्पष्ट शब्दोंसे अनुमोदना कर रहे हैं । जब ईसाई धर्मके पादरी अपने ईश्वरसे यह प्रार्थना करते हैं कि “हे ईश्वर ! दोनों पक्षोंको सुमति सूझे और शीघ्र ही इस युद्धिकी शान्ति हो,” तब दिगम्बर-जैनधर्मके अनुयायी लालाजी प्रचार करते हैं कि “ क्या आप कह सकते हैं कि सत्यकी विजयके लिए यह रूपया खर्च करना और मनुष्यहानि करना व्यर्थ है या अन्याय है ? कभी नहीं । ” देखा लालाजीका सत्यका शास्त्र ? आप रागद्वेषरहित जिनदेवके भक्तोंको और सारी दुनियाको यह सिखलानेके लिए तयार हुए हैं कि लाखों मनुष्योंकी हत्या करनेसे सत्यका विजय होता है ! लालाजी यदि यह भी बतला देनेकी कृपा करते कि जिस सत्यके लिए आप मनुष्योंके संहार करनेका हक माँगते हैं उस सत्यकी व्याख्या और स्वरूप क्या है, तो अच्छा होता । क्या जो कुछ आप कहते हैं वही 'सत्य' है ? प्रत्येक युद्धमें लड़नेवाले दोनों ही पक्ष अपनी अपनी बातको 'सत्य' कहते हैं । यदि इस तरहके 'सत्य' के लिए अर्थात् 'स्वयं माने हुए सत्य' के लिए ही एक मनुष्यको दूसरे मनुष्यकी जान लेनेका हक मिल जाय, तो फिर समझ लेना चाहिए कि प्रत्येक राज्य, प्रत्येक समाज, प्रत्येक जाति और प्रत्येक व्यक्तिको खून करने और रूपया उड़ानेका हक मिला हुआ है; क्योंकि कभी न कभी तो इनका दूसरे राज्य, समाज, जाति और व्यक्तिके साथ किसी न किसी विषयमें झगड़ा हो ही जाता है । परन्तु यदि ऐसा हक मिल जायगा, तो दुनियामें शायद एक भी मनुष्य जीता नहीं रह सकेगा—आदमीको आदमी

खा जायगा; पर बेचारे लालाजीमें इतनी बात सोचनेकी बुद्धि कहाँ ?

तीर्थोंके मामलेमें दिगम्बरसमाजने एक पक्ष लिया है और श्वेताम्बरसमाजने दूसरा । दिगम्बर समाजका दावा है कि अमुक तीर्थ हमारा है और यही उसका 'सत्य' है, इसी प्रकार श्वेताम्बरसमाज दावा करता है कि अमुक तीर्थ हमारा है और यही उसका 'सत्य' है । पाठक देखेंगे कि यहाँ 'सत्य' का कोई एक खास स्वरूप नहीं है । अर्थात् दोनों अपने अपने दावेको सत्य बतला रहे हैं । ऐसी दशामें इस 'स्वयं माने हुए' सत्यके लिए लड़ना—भोले भक्तोंके रूपयोंको उड़ाना और वैरविरोधको पुष्ट करके समाजको निचोड़ डालना, सर्वथा अन्याय है । इसके विरुद्ध क्षमा, नम्रता, भ्रातृत्व, मैत्री आदि सार्वकालिक, सर्वसम्मत और समस्त जीवोंके लिए एक से उपयोगी 'सत्य' हैं, इसलिए इन की रक्षाके लिए—अर्थात् ऐक्य, और सुखशान्तिरूप सिद्धान्तकी रक्षाके लिए युद्ध करना 'न्याय' है; परन्तु यह युद्ध मारपीटसे नहीं किन्तु समझौतेसे, न्यायसे, लोकमत तैयार करनेरूप निर्दोष अस्त्रसे और लोगोंको अपनी निजकी बुद्धिसे विचार करनेकी सम्मति देनेरूप निरुपद्रव शस्त्रसे होगा चाहिए । लालाजी ! हमारा युद्ध इसी प्रकारका है; लाखों मनुष्योंकी हत्या और करोड़ों रूपयोंका स्वाहा करनेवाला आपका युद्ध आपको ही मुबारक हो ! आपको यदि हत्यामें और रुपया बरबाद करनेमें ही धर्मलाभ दिखता हो, तो आप अपना यह सिद्धान्त अपने ही घरमें चलाइए; इसकी दूसरों पर आजमायश करनेकी आवश्यकता नहीं है ! आप घरद्वारवाले हैं, दूकानदार हैं, खुशीसे अपना घर द्वार बेच डालिए और अपना सारा रुपया तीर्थरक्षाके लिए अर्पण कर दीजिए, पश्चात्

दिगम्बर बनकर जंगलमें जा बैठिए । इससे आपको बड़ेसे बड़ा धर्मलाभ होगा जिसे कि आप बिना माँगे ही समाजको देनेके लिए तैयार हो गये हैं ! समाजको आपकी सम्मति नहीं चाहिए । अपना घर खाली करके आपके समान पराई पूँजीसे बहादुर बननेकी उत्कण्ठा रखनेवालोंके हाथके खिलौने बननेके लिए लोग तैयार नहीं हैं ।

लालाजी इस प्रकारका डौल बनाते हैं मानों आप सत्यकी रक्षा करनेके लिए ही कमर कसके तैयार हुए हैं; परन्तु आपका 'सत्य' स्वयं आपका ही माना हुआ सत्य है, न कि वास्तविक अथवा सार्वजनिक सत्य; और इस सत्यकी रक्षाके लिए किये जानेवाले युद्धका स्वरूप भी आपहीने अपनी ही पद्धतिसे अर्थात् हिंसक आशयसे खड़ा किया है । इस तरह लालाजीका 'लक्ष्य' दूषित है और उक्त 'लक्ष्य'तक पहुँचनेके लिए उन्होंने जो 'मार्ग' ग्रहण किया है वह भी दूषित है । जिसकी बुद्धि इतनी भ्रमित हो गई हो कि 'लक्ष्य' और 'मार्ग' दोनोंमेंसे एक भी बातका वास्तविक निर्णय नहीं कर सकती है, ऐसे मनुष्य पर हमें दया करनी चाहिए और ऐसी भावना भानी चाहिए कि उसे सुबुद्धिकी प्राप्ति हो ।

अतः अब लालाजीको छोड़कर भगवान् महावीरके पुत्रों और वतिरागताके इच्छुकोंके सम्मुख मैं नीचे लिखा खुलासा करता हूँ कि जिससे लालाजीके फैलाये हुए भ्रमजालकी असत्यता आप-ही-आप समझमें आजाय और इस कुपथसे बचनेकी बुद्धि प्रत्येक जैनभाईको सूझे ।

१ दिगम्बर या श्वेताम्बर भाइयोंको अपनी पूजापद्धति नहीं छोड़ना है ।

देशके नेताओंसे 'न्याय' करानेकी जो सम्मति दी गई है उसमें यह कहीं भी नहीं कहा गया है ।

कि दोनों सम्प्रदायोंको एक ही रीतिसे पूजा करनेके लिए तैयार होना चाहिए। मेरा कहना तो यह है कि सब लोग अपनी, अपनी पूजाविधि खुशीसे बनाये रखें, श्रद्धापूर्वक बनाये रखें और अपनी अपनी पद्धतिसे पूजा करनेके कार्यमें, इस समय जो अन्तराय आड़े आते हैं, वे दूर हो जायँ और निर्विघ्नतापूर्वक अपनी अपनी रीतिसे पूजा होती रहे, इस प्रकारका मार्ग देश-भक्त नेताओंके द्वारा ग्रहण करलेना चाहिए। मैं इस बातको मानता हूँ कि यदि दिगम्बर-श्वेताम्बर अगुए स्वयं ही एकत्र होकर आपसमें निबट्टेरा कर लें और ऐसा प्रयत्न करें जिससे किसी भी तीर्थ पर अपनी अपनी पद्धतिसे पूजा पाठ करनेमें किसी प्रकारका झगड़ा न होने पावे, तो यह सबसे अच्छा मार्ग है और इसमें दोनोंकी ही प्रतिष्ठा है; परन्तु कठिनाई यह है कि दोनोंही सम्प्रदायोंमें लालाजी जैसे मताग्रही और कलहप्रेमी महात्माओंकी कमी नहीं है। ऐसी दशामें तीसरेको बीचमें डाले बिना सफलता नहीं हो सकती और इसी कारण भारतके सबसे अधिक विश्वासपात्र, देशहितैषी और धर्मभावनायुक्त नेताओंको पंच बनाकर उनके द्वारा फैसला करानेकी सूचना की गई है।

## २ 'लोभ'के वश मुकद्दमा मिटानेकी सूचना नहीं की गई।

“तुम पैसे बचा रखो, लोभी बनो, धर्म रक्षाके लिए धनको क्यों बरबाद करते हो?” इस तरहका इशारा भी हमारे लेखमें नहीं है। हमारे लिखनेका अभिप्राय तो यह था कि आज कल इस देशकी ऐसी दशा है कि “धनका टोटा है, उदारताकी कमी है” इसलिए जो थोड़ा बहुत धन इस देशमें बच रहा है, उसका उपयोग आपसी लड़ाई-झगड़ोंमें न करके संसारको धर्ममय पवित्र और उच्चसंस्कारसम्पन्न

बनानेके काममें करो। किन कामोंमें खर्च करना चाहिए और किनमें नहीं, इस बातका 'विवेक' करनेके लिए कहना अधर्म कदापि नहीं हो सकता; किन्तु आँसू बन्द करके समाज और देशका बल तोड़नेमें धनकी और सो भी पराये धनकी बरबादी करना अवश्य ही अधर्म है; बल्कि कहना होगा कि इसके समान धर्मद्रोही, देशद्रोही और समाजद्रोही कार्य दूसरा नहीं है। शास्त्रोंके उद्धार और प्रचारका काम; न्यायलब्ध धनसे उद्घर्ष निर्वाह करना सिखानेवाली विद्याओंके साधन खड़े करनेका काम; जबतक समाजमेंसे निरुद्यमता न निकाल दी जायगी तबतक धर्माचरणोंका होना कठिन है, इसलिए निरुद्योगिता मिटानेवाली संस्थायें खोलनेका काम; समाजकी कुरीतियाँ मिटानेके आन्दोलनका काम; जबतक देशमें शान्ति, एकता, स्वाधीनता, और धनधान्यकी पूर्णता न होगी, तबतक देशके धर्मोंकी भी रक्षा होना संभव नहीं है, इसलिए जो देशभक्त नेता देशकी स्थिति सुधारनेके लिए जी जानसे परिश्रम कर रहे हैं, उनके प्रयत्नमें तन-मन-धनसे सहायक बननेका काम; इस तरहके न जाने कितने काम करना है। इन सभी कामोंमें धनकी आवश्यकता है और यह सभी जानते हैं—देशी और विदेशी सभी अर्थशास्त्रज्ञ एक स्वरसे कहते हैं कि भारत जैसा निर्धन देश कोई भी नहीं है। अतः ऐसे निर्धन देशमें यदि किसीके पास थोड़ा बहुत धन हो तो उस धनका केवल वही अकेला मालिक नहीं है, किन्तु सारा देश मालिक है, वह तो केवल 'ट्रस्टी' है। उस धनको स्वेच्छाचरितापूर्वक आपसी युद्धोंके द्वारा देशको और भी अधिक निर्बल बनानेके काममें उड़ानेका किसी भी भारतवासीको अधिकार नहीं है। मेरा वचन किसीको सहन हो या न हो, और इसके लिए

मुझे चाहे जो उपनाम दिया जावे, परन्तु मैं इस बातको अपनी सारी शक्ति लगाकर जोरके साथ कहूँगा कि जो भारतवासी धनी बनकर उस धनका उपयोग अपने निजी मौज-शौकमें और लड़ाई-झगड़े करके देशकी दशा और भी अधिक शोचनीय बनानेमें करते हैं, उनके समान कोई मूर्ख, देशद्रोही और पापी नहीं है और जो लोग धनियोंको सर्वोपयोगी धर्मसिद्धान्तोंके प्रचारमें और देशसेवाके अनेक कामोंमें धन खर्च करनेकी सलाह देनेके बदले इस प्रकारके धर्मयुद्धोंमें तथा आपसी लड़ाई-झगड़ोंमें खर्च करनेके लिए उत्तेजित करते हैं वे मनुष्य जातिके कट्टर शत्रु हैं ।

**३ अमुक पक्ष न्यायका उल्लंघन कर रहा है, इस प्रकारका दोष किसीको भी नहीं लगाया गया ।**

हमारी अपीलमें यह कहीं भी नहीं कहा कहा गया है कि दिगम्बरोंने न्यायका उल्लंघन किया है । जो मनुष्य आपसमें फैसला करनेकी सलाह देनेके लिए निकला है वह ऐसा कभी कह भी नहीं सकता कि झगड़ा किसने खड़ा किया और अमुक तीर्थका सच्चा हकदार कौन है । किसी प्रकारका आरोप और किसी प्रकारका जजमेंट ( फैसला ) देना उसका काम ही नहीं है । मैंने बड़ी ही सावधानीसे-इस तरहसे कि किसी एक भी पक्ष पर कोई आरोप न आवे-किसीके साथ गैर-इन्साफी न हो जाय-तटस्थ होकर अपील की थी कि छद्मस्थ होनेके कारण मनुष्य मात्र भूलका पात्र है । इस लिए एक पक्षसे भूल भी हो सकती है, तो भी दूसरे पक्षको अपने भाईके साथ लड़नेके बदले आपसमें ही समझौता कर लेना चाहिए । मेरा निजी और दृढ़ अभिप्राय यह है कि जिन शान्तिमय स्थानोंको अगणित आत्माओंके मोक्ष प्राप्त करनेके कारण हम पवित्र

मानते हैं उन स्थानों पर, जो जन्मसे जैन हैं केवल उन्हींको नहीं किन्तु अन्य लोगोंको भी-जो वहाँ आते हैं-दर्शन-पूजन-ध्यान करनेका सुभीता होना चाहिए और यदि वे वहाँ दर्शन-पूजन करें तो इससे हमें प्रसन्न होना चाहिए । दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनोंको आपसमें सलाह करके ऐसा प्रबन्ध कर डालना चाहिए कि दोनों ही अपनी अपनी पद्धतिसे निर्विघ्नतया पूजापाठ किया करें । परन्तु पूजनकी इस आवश्यकताकी ओर और पूजनका अधिकार प्रत्येक मनुष्यको मिलना चाहिए इसकी ओर ध्यान देनेके लिए सरकारी कानूनमें गुंजायश नहीं है । कानून तो पहाड़को एक स्थावर सम्पत्ति मानकर उसका अधिकार किसी एक पक्षको दे देना, बस इतना ही मतलब रखता है । पर यदि हम देशभक्त अगुओंसे अपना न्याय करावेंगे, तो वे धर्मको बाधा न पहुँचे और सच्चे हकदारकी मालिकी भी न जाय, इन दोनों बातोंका खयाल रखकर कोई अच्छा मार्ग ढूँढ़ निकालेंगे । जिन लोगोंपर कानूनसे लड़नेकी ही धुन सवार है, उन्हें जानना चाहिए कि कानून केवल बुद्धिवादका परिणाम है, उसमें अभीतक धर्मभावनाका मेल नहीं हुआ है । मद्यपान और वेश्यागमन ये दो बहुत ही बड़े अधर्म और अनर्थ हैं, तो भी बुद्धिवादसे तैयार किया गया सरकारी कानून न वेश्याके धंधेको बन्द करता है और न शराब बेचना बन्द करता है । इसीलिए धर्म और कानून दोनोंके अनुभवी अगुओंके द्वारा इन धार्मिक युद्धोंका फैसला करा लेना हमारे लिए विशेष कल्याणकारी है । इसके सिवाय जिन्होंने सम्मेलनशिखरसम्बन्धी मामलोंपर बारीकीसे विचार किया है वे जानते हैं कि यह मुकद्दमा 'प्रिवी कौन्सिल' तक जायगा, तो भी इस कलहकी समाप्ति होनेवाली नहीं है । इसके सम्बन्धमें ऐसी

बहुतसी बातें मुझे मालूम हुई हैं जिन्हें मैं प्रकट नहीं कर सकता; परन्तु इतना तो निस्सन्देह होकर कहा जा सकता है कि प्रिवी कौंसिलसे फैसला मिल जानेपर भी अदालतोंके धक्के खानेका काम जैनोंके भाग्यसे टलनेका नहीं। इस तरह वर्षोंतक कष्ट भोगकर, लाखों रुपयोंका पानी बनाकर, परस्पर एक दूसरेको निर्बल बनाकर, जब दोनों पक्ष थक जायेंगे तब अन्तमें आपसमें ही निबटेरा करनेको लाचार होंगे। इससे तो यही अच्छा है कि अभीसे पंचोंके द्वारा मामला तै करा लिया जाय और मेल-मिलाप बढ़ाया जाय। वणिक जैसी सयानी जाति भी यदि इस ओर ध्यान न देगी तो और कौन देगा ?

### ४ देशके नेता जैनधर्मके गौरवकी रक्षा अवश्य करेंगे।

देशके नेता भारतवर्षके ही वातावरणमें जन्मे हैं और भारतवर्षमें ही बड़े हुए हैं; इसलिए उनमें धर्मभावना अवश्य होगी और जिनमें धर्म-भावना है वे अजैन होने पर भी जैनधर्मका गौरव किस बातमें है इस बातको सुगमतासे समझ सकेंगे और उस गौरवकी रक्षाका भी वे स्वदेश-प्रेम और धर्मभावनाके कारण अवश्य खयाल रखेंगे। इसके सिवाय आजकल जैनधर्मसम्बन्धी पत्र, पुस्तक, शास्त्रादि अँगरेजीमें भी प्रकाशित होने लगे हैं और अजैन भारतवासी जैन-सभाओंमें जैनतत्त्वसम्बन्धी व्याख्यान भी देने लगे हैं, ऐसी दशामें भारतके सारे ही नेता जैन-भावनाओंसे बिल्कुल ही कोरे हैं, ऐसा कहना तो अपनी अज्ञानता प्रकट करना है। पर लालाजीको अपनी अज्ञानता प्रगट होनेकी क्या परवा है, उन्होंने तो देशके नेताओंमें जो जैनधर्मसम्बन्धी अज्ञानताका दोष निकाला है, वह एक दूसरे ही आशयसे निकाला है।

उन्हें केवल तीर्थोंकी मालिकी या पूजाके हकका ही निर्णय नहीं चाहिए, वे तो यह जजमेंट चाहते हैं कि दिगम्बरसम्प्रदाय ही सबसे पहला और सच्चा धर्म है और श्वेताम्बर पीछेसे निकला हुआ झूठा धर्म है और इस बातका जजमेंट देनेकी लालाजी जितनी योग्यता बेचारे देशके नेताओंमें कहाँ ? जान पड़ता है लालाजीके कानमें स्वयं श्रीमहावीर स्वामी आकर कह गये हैं कि श्वेताम्बर हमारे संघमें नहीं हैं और वे मिथ्याती हैं। लालाजी कहते हैं—“ क्या मिथ्यात्व सम्यक्त्व मिलनेसे महावीरकी एकता अथवा मुक्तिका मार्ग हो सकता है ? कदापि नहीं .... जल अग्निकी अथवा अंधकार प्रकाशकी एकता हो सकती हो तो दिगम्बर-श्वेताम्बरकी एकताकी कल्पना भी हो सकती है, अन्यथा नहीं। ” ( लालाजी जोशमें आकर गये तो ये श्वेताम्बर धर्मको अन्धकार कहने, पर लिख गये अपने ही धर्मको अन्धकार ! ) लालाजी या उनके ‘ धर्मात्मा ’ लेखक जिस हृदयसे ये शब्द लिख रहे हैं उस हृदयको मैं बाँच सकता हूँ। आप इन झगड़ोंसे दिगम्बरधर्मकी प्राचीनता और सत्यता और श्वेताम्बरधर्मकी अर्वाचीनता तथा असत्यता कोटोंके द्वारा सिद्ध कराना चाहते हैं। यदि मैं भूलता नहीं होऊँ तो एक केसमें ऐसा प्रयत्न सचमुच किया भी गया है। सरकारी अदालतोंसे इस प्रकारकी आशा करना, इसे ‘ धर्म भोलेपन ’के सिवाय और क्या कह सकते हैं ! जब मैं आपसमें सुलह और शान्ति करानेके लिए खड़ा हुआ हूँ, तब एक तटस्थ पुरुषके रूपमें मैं इस बातका इशारा भी नहीं कर सकता हूँ कि कौन सम्प्रदाय पहला है और कौन पीछेका है, और तीर्थोंकी मालिकी तथा पूजनके हकके झगड़ेसे ‘ कौन धर्म अधिक प्राचीन



है या सच्चा है' इस प्रश्नका कोई सीधा सम्बन्ध भी तो नहीं है। इसी प्रकार यह कहनेका साहस करना भी—कि जो प्रथम जन्म पाता है वह सच्चा और जो पीछे जन्म पाता है वह झूठा—एक प्रकारसे अपनी मूर्खता प्रकट करना ही है। इतना तो मैं कहूँगा कि इतिहासज्ञोंके उपयोगके लिए तारीखोंका पता अवश्य लगाया जाना चाहिए और जगतके तत्त्वज्ञानकी वृद्धिके लिए जुदा जुदा धर्मशास्त्रोंके सिद्धान्तोंकी जाँच-पड़ताल भी अवश्य होनी चाहिए; परन्तु 'मैं सच्चा और तू झूठा' केवल इसी कदाग्रहकी तुष्टिके लिए जो धार्मिक विवाद और शास्त्रार्थ आदि होते हैं, इस समय हमें उन्हें तिरस्कारकी दृष्टिसे देखना चाहिए और जहाँतक बन सके उन्हें दबा देना चाहिए। जनसमाजमें जिसे जो धर्म अच्छा लगे उसे वह श्रद्धापूर्वक पाले और दूसरे लोग अपनी रुचिके अनुसार जिस धर्मको पालते हों उनके प्रति सहिष्णुता रखे—माध्यस्थ्य वृत्ति रखे, यही सबसे अच्छा मार्ग है। मनुष्य जबसे समाज बना कर रहना सीखा है, तबसे समाजकी रक्षाके लिए उसे इस नीतिका अवलम्बन करना ही पड़ा है। यदि कोई मनुष्य औरोंके धर्मोंके प्रति सहिष्णुता नहीं रख सकता है, तो वह समाजके लिए एक भयंकर जन्तु है, समाजके हितके लिए उसे सभाजमेंसे दूर कर देना चाहिए। आश्चर्यकी बात तो यह है कि लालाजी जिस धर्मको कोर्ट-के द्वारा सत्य सिद्ध कराना चाहते हैं उसी धर्मको स्वयं इतना भी नहीं जानते हैं जितना एक साधारण विद्यार्थी जानता है। इस पर भी आपका यह हौसला है ! मालूम नहीं यह लेख आपका ही है या आपकी आड़में किसी दूसरे धर्मात्माकी दिखलाई हुई कारीगरी है।

५ आपसमें फूट कौन कराता है ?

लालाजी कहते हैं कि " नहीं मित्रो, (अपील करनेवाले) असंभव एकताका लोभ दिखाकर दिगम्बरोमें अनेकताका प्रयत्न कर रहे हैं—आपसमें फूटका बीज बो रहे हैं।" इस विषयमें मैं अब क्या कहूँ ? इसका उत्तर तो लालाजीको एक बच्चा भी दे देता कि पानीसे आग बुझती है, या सुलगती है ? पर इतना तो मुझे अवश्य कहना चाहिए कि एकताकी हिमायत करनेवाले दिगम्बर भाइयोंके विरुद्ध दूसरे दिगम्बरी भाइयोंको उत्तेजित करके परस्पर शत्रुता उत्पन्न करनेका काम लालाजीने शुरू कर दिया है। इतना ही नहीं किन्तु आपने 'भारतजैनमहामण्डल' जैसी संस्थाके सुशिक्षित और प्रतिष्ठित सभ्योंपर भी इस एकताकी हिमायतके अपराधके बदले निन्दाके वाण छोड़कर कलहका बीज बो दिया है।

६ पंच नियत करनेकी सम्मति देनेवाले सज्जन ।

'तीर्थोंके झगड़े मिटाइए' शीर्षक अपीलमें जिन सज्जनोंके हस्ताक्षर हैं वे दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों ही सम्प्रदायोंके प्रसिद्ध और प्रतिष्ठित पुरुष हैं। इस कार्यमें शेटपार्टी भी शामिल है और सुशिक्षित-पार्टी भी शामिल है। अपीलमें ऐसी एक भी सही नहीं है जिसने आँसुकी शर्मसे या आग्रहसे अपने हृदयके विरुद्ध सम्मति दी हो। पर इस अपीलके विरुद्ध हमारे लालाजीने जो पेंफलेट निकाला है उसमें हृदयसे सहियाँ देनेवाले शायद दो चार सज्जन भी न होंगे। पर, सहियोंमें जिन सेठ सज्जनोंके नाम छपे हैं उन्हें, या उनकी तरफसे सही कर देनेवाले पर धर्मविषयक गहरी समझ न रखनेवाले मुनीम साहबोंको, दोष देनेके लिए मैं तैयार नहीं हूँ। क्योंकि यह सारी ही बाजी अकेले लालाजीकी खेली हुई है और आपहीने बड़े प्रयत्नसे दवाव

आदि डालकर ये सहियाँ कराई हैं । अस्तु । पंच नियत करना या नहीं करना, यह दोनों सम्प्रदायोंकी और खास करके वादी प्रतिवादि-योंकी इच्छा पर निर्भर था, उनसे कोई जबर्दस्ती एकता करनेको नहीं कहता था, एकताके हिमा-यती भी दबाव डालकर नहीं किन्तु नम्र प्रार्थना और समझौतेके मार्गसे ही काम कर रहे थे, इसके सिवाय एकताकी हिमायत दिग्म्बर-श्वेताम्बर दोनों पक्षके सेठ और बाबुओंकी ओरसे ( न कि किसी एक ही सम्प्रदायकी ओरसे ) होती थी, तब यह समझमें नहीं आता कि एक लालाजीको ही इसमें अपने धर्मके ध्वंस होनेका भय क्यों हुआ ? जब अभीतक श्वेताम्बरोंने ऐसी कोई कार्रवाई नहीं की है तब लालाजी जैसे धर्मोन्मत्तोंके लिखे हुए अण्डवण्ड लेख पर दिग्म्बर समाजके सेठ सज्जनोंने सही देकर और अपनी शामिलगीरी बतलाकर हमारी समझमें तो श्वेताम्बरोंके सन्मुख अपनी अनुदारता ही प्रकट की है और मानों बतला दिया है कि हम सुलहको नहीं कलहको पसन्द करते हैं । मैं श्वेताम्बरसम्प्रदायके प्रसिद्ध प्रसिद्ध सेठोंसे —अगुओंसे मिला हूँ और उन्होंने इस एकताके आन्दोलनके प्रति पूरी पूरी सहानुभूति प्रकट की है । इसी प्रकार मैं दिग्म्बर सम्प्रदायके भी कई सुप्रसिद्ध अगुआ-सेठोंसे मिला हूँ और उन्होंने भी इस आन्दोलनके प्रति प्रसन्नता प्रकट की है । इसलिए मुझे विश्वास है कि धीरे धीरे लोकमत तैयार हो जायगा और धर्म तथा देशकी नीवरूप एकताका शुभांगमन जैनसमाजमें अवश्य होगा ।

लालाजीने हमारी अपील पर सही करने-वाले सज्जनोंपर जिस तरह कटाक्ष किया है, उनके पेम्फलेट पर सही करनेवालों पर वैसा कटाक्ष करनेकी मेरी इच्छा नहीं है; परन्तु यह मैं अवश्य कहूँगा कि पक्ष या विपक्षके लेखोंपर दश पाँच सहियाँ अधिक या कम होनेसे कोई

बड़ा भारी हित या अहित होनेवाला नहीं है । सुलहकी पक्षमें सही देकर ही यदि सब लोग बैठ रहेंगे तो यह काम आगे न बढ़ सकेगा; और विपक्षमें सही देनेवाले सज्जन यदि भीतरसे सुलहके पक्षपाती होंगे तो उनसे कुछ सुलहके मिश-नकी हानि नहीं हो सकेगी । उदाहरणके तौर पर इन्दौरके एक प्रतिष्ठित सेठजीने मेरे इस आन्दो-लनके प्रति सहानुभूति प्रकट की थी; परन्तु उन्हींके मुनीमजीसे सेठजीके नामकी सही लाला-जीने अपने निन्दात्मक पेम्फलेटमें करा ली है । मेरा विश्वास है कि एक दिन ये हमारे विरुद्ध सही-द देनेवाले सज्जन भी जगतको ' शासनप्रेमी ' बना-नेमें हमारे साथ हाथ मिलायेंगे और परस्परके वैरविरोधको भुला देंगे; बल्कि इससे भी आगे बढ़कर मैं तो यह भावना भाता हूँ कि अपने स्वर्चसे इस आन्दोलनको जारी रखनेके अपराधके कारण मेरा गालियोंसे सत्कार कर-नेवाले लालाजी और उनकी प्रेरणासे सही कर-नेवाले तमाम सज्जन एक दिन रागद्वेषका निः-शेष क्षय करके वीतराग अवस्था प्राप्त करें ।

एक बात और लिखकर मैं इस लेखको समाप्त करूँगा । लालाजीको, मेरी एकताकी चर्चाको ' कूटनीति ' कहकर और उसमें शामिल होनेवाले प्रसिद्ध दिग्म्बर महाशयोंको धर्मशून्य, खाद्या-खाद्यविचारहीन आदि विशेषण देकर भी सन्तोष नहीं हुआ, इसलिए उन्होंने लगे हाथ मुझपर भी पुष्पवृष्टि कर डाली है और इसे मैं सचमुच ही उनकी ' कृपावृष्टि ' समझता हूँ । यद्यपि जैसा कि लालाजी कहते हैं, मैं तीर्थरक्षामें पाप नहीं बत-लाता हूँ, ( मैं तो तीर्थरक्षाका अच्छेसे अच्छा और थोड़े स्वर्चवाला मार्ग बतलाता हूँ ) तो भी मुझे इस बातको स्वीकार करनेमें कोई संकोच नहीं है कि मैं किसी मूर्तिकी पूजा नहीं करता ( और पूजनेवालोंको रोकना भी नहीं चाहता ) ।

परन्तु मेरे दूसरे भाई जिन महावीर भगवानकी मूर्ति पूजनेमें अपने आत्माका कल्याण समझते हैं, उन्हीं महावीरदेवके समस्त धर्म राज्यकी-समग्र जैनसमाजकी मैंने एक बड़े विस्तारवाली विशाल मूर्ति बना रक्खी है और उसकी सेवा पूजा अर्थात् उस समाज और उस धर्मकी सेवा-शुश्रूषा यथाशक्ति यथामति तन-मन-धनसे करना यही मेरी प्यारी मूर्तिपूजा है । दूसरे तमाम मनुष्योंको अपने अपने इष्ट देवकी पूजा करनेका जितना हक है उतना ही मुझे इस विशाल मूर्तिकी पूजा करनेका है । मेरी पूजापद्धति किसीका दिल दुखानेवाली या किसीको हानि पहुँचानेवाली नहीं है, इस लिए दूसरे सज्जनोंको चाहिए कि वे अपनी अपनी पूजा-पद्धतिमें श्रद्धापूर्वक लगे रहें और मेरी पूजा-विधिकी ओर माध्यस्थ्यभावना-मतसहिष्णुता रक्खें । दूसरोंकी दृष्टिमें मेरी पूजाविधि भले ही अच्छी न हो, पर मेरी पूजापात्र मूर्ति इतनी विशाल है कि उसमें दिगम्बर-श्वेताम्बर सबका समावेश हो जाता है, इस लिए मैं तो अपनी समझके अनुसार अपनी पूजामें इनको भी पूजाका मान देता हूँ और इनकी सेवाभक्तिके लिए शरीर-द्रव्यादि सामग्री भेंट करता हूँ । इसलिए मुझपर इन देवोंको ( श्वेताम्बर-दिगम्बरोंको ) अवकृपा नहीं करनी चाहिए और यदि कदाचित् अवकृपा हो जाय तो क्या डर है, देव तो मेरे ही हैं । इन्हें मना लेनेकी कला इनके भक्तसे छुपी नहीं रह सकती । लोकमें प्रसिद्ध है कि भक्तके सामने भगवान् भी सीधे हो जाते हैं ।

समग्र जैनसमाजकी  
मूर्तिका उपासक  
और  
अविभक्त जैनसंघका श्रावक,-  
वाडीलाल मोतीलाल शाह ।

## भारतमें जैनसमाजकी अवस्था ।

( जातिप्रबोधकसे उद्धृत । )

“ पाठको ! आगेके पृष्ठकी संख्याओंको ज़रा ध्यानसे देखिए । इनसे आपकी अवस्थाका पता लगता है, जातिके ह्रासका कारण मालूम होता है । जैनजातिमें स्त्रियोंकी कुल संख्या ६०४६२९ है जिसमें १५३२९७ विधवाओंकी संख्या है । अर्थात् १०० पछे २५ विधवार्यें हैं और स्त्रियोंकी संख्या पुरुषोंसे ३८९२४ कम है । किसी किसी पुरुषके एकसे अधिक स्त्रियाँ भी हैं । यह बात विवाहित पुरुषों और विवाहिता स्त्रियोंकी संख्यासे मालूम होती है । २६९६२७ विवाहिता स्त्रियाँ हैं और २६८९३८ विवाहित पुरुष हैं अर्थात् ६९६ स्त्रियाँ विवाहित अधिक हैं । एक तो वैसे ही स्त्रियोंकी संख्या कम, दूसरे चौथाई विधवार्यें, तीसरे किसी किसी पुरुषके एकसे अधिक स्त्रियाँ । तब विचार करनेकी बात है कि कितने पुरुषोंको कुँवारा रहना पड़ता है, अर्थात् कितने पुरुष सन्तान उत्पन्न करके जातिकी संख्याको नहीं बढ़ा सकते । इन कारणोंसे ही अब तक बराबर जातिका ह्रास होता रहा, वर्तमानमें हो रहा है और आगेको होगा । यह बात अविवाहित स्त्री पुरुषोंकी संख्यासे भी सिद्ध हो जाती है । ३१७१९७ पुरुष अविवाहित हैं और १८१७०५ स्त्रियाँ अविवाहित हैं, अर्थात् १३५४९२ पुरुषोंको, अवश्य कुँवारा रहना पड़ेगा । कोई कोई पुरुष कई कई स्त्रियोंसे विवाह करता है, इसके हिसाबसे कुँवारोंके और भी अधिक रहनेकी सम्भावना है । अतएव यदि जातिकी संख्या बढ़ाना अभीष्ट है तो कुँवारोंकी दशा सुधारनी चाहिए, समाजमें विधवार्यें कम हों इसका प्रयत्न करना चाहिए । एक पुरुषको एक पुरुषको एकसे अधिक स्त्रियोंके साथ विवाह करनेसे रोकना चाहिए तथा रंडु-वोंको जिनकी इन्द्रियाँ शिथिल हो गई हैं पुनर्विवाह करनेसे मना करना चाहिए । ”



# भारतवर्षमें जैनियोंकी अवस्था ।

आयु वर्ष	रुप	स्त्री	अविवाहित पुरुष	अविवाहित स्त्री	विवाहित पुरुष	विवाहित स्त्री	विधुर	विधवा
०-१	१९४४	१९७१९	१९८८७	१९६२३	५२	८१	५	१५
१-२	२९६६	९५७१	८९०२	९४८५	४३	८१	२१	५
२-३	३०९६	१६४३४	१५९७०	१६२३९	८८	१७८	३८	१७
३-४	१६३२	१६११५	१५४७३	१५८४८	११३	२४७	४६३	२०
४-५	४६७८	१४३७३	१४४९१	१३९७७	१२९	३६१	५८	३५
५-१०	२०९८	७००८८	७०८५१	६५३१४	१०९४	४५१३	१५३	३६१
१०-१५	९१२९	५६२२५	६३१६०	३४४८३	५६१६	२०८३६	३५३	९०६
१५-२०	८९७६	४९१४९	३९५९५	३७०८	१८६०८	४२७३५	७७३	२७०६
२०-२५	२३१०	६०२२०	२५७१८	९९४	३४४४६	५१८८२	२१४६	७३४४
२५-३०	१०६८	५५४१२	१५३९५	५३६	४२१७५	४३५६४	३५९८	११३१२
३०-३५	४५०९	५२६६४	९०५६	४३९	४०५४२	३६१७६	४९११	१६०२९
३५-४०	२७७२	३६४०९	५०६९	२५१	३२६१६	२२३९७	५०८७	१३७६१
४०-४५	१२३७६	४४४७४	४७७४	२७९	३०४०९	२०९२८	७१९३	२३२६७
४५-५०	२८८०	२३५७७	२७७५	१३१	१९८८०	९८९७	६१४५	१३५४९
५०-५५	३१९३३	३३३२४	३०३१	१५९	१९७५१	८८८२	९१५१	२४२८३
५५-६०	१४५१९	११६९८	१०४८	६१	८६१८	२९६०	४८५३	८६७७
६०-६५	१६७४५	२०९५	१२६८	८४	८७६९	२६७७	६७०८	१८१९१
६५-७०	५९६९	५३३९	४११	३८	३०१९	६४९	२५३९	४६५२
७०-७५	७०३३	८८८६	४३३	५६	२९७०	५८३	३६४०	८२४७
कुल	६४३५५३	६०४६२९	३१७१९७	१८१७०५	२६८६३८	२६९६२७	५७४१८	१५३२९७